॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

प्रात स्मरणीय परमपूज्य सर्वगुणालकृत पण्डितप्रवर
श्रीमान् माननीय न्यायाचार्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णीके
चरण कमलोंमें सादर समर्पित

श्रद्धांजलि

गुरुवर्य ! इस अपार ससाररूपी जलनिधिमें, क्रोधमानादिक कषायरूपी बलवती तरग, मोहरूपी मगरमच्छादिक जलचर एव मिथ्यात्व कुदेवादिक रूपी बडवानल हैं, जिसमेसे प्राणियोंको तारनेवाली दर्शनरूपी नौकाक पतवार ! इस पच परावर्तन ससाररूपी महागहन अधकारमय अटवीमें भटकनेवाले प्राणियों को ज्ञानरूपी सूर्य ! चतुर्गति भ्रमणरूपी दु खदावानलको चारित्ररूपी महामेघ ! कल्याणमदिरकी शांतिमय शिखर ! वर्तमान दु खमय ससारके सर्वोपरि भावज्ञानी और निष्कारण जगत्के बन्धु !

ऐसे आपके मेरुसदृश उत्तुगगुणसपन्न चरणकमलोंको —

ससार दु खसे भयभीत, श्रेयस्पदका इच्छुक, ह्रस्व अवगाहनाका धारक, बालक स्पर्शकर पवित्र होना चाहता है । सो

कठिन है। अत दूरसे ही भक्तिपूर्वक श्रद्धांजलि समर्पित करता है।

आशा है आप इस सेवकको चरणोंकी शरणमें लेकर कृपा-दृष्टि रखकर कृतार्थ करेंगे।

"आपको मेरे सदृश हैं अनेक"
"आप तो मेरे लिये हैं सुएक"

समाधिमरण पत्र पु जसे उद्धृत

समर्पक—
सि० कस्तूरचद नायक,
जवाहरगज,
जबलपुर।

प्रस्तावना

सुहृद् पाठक वृन्द,

हम ऐसे अमूल्य ज्ञान रूपी हारको प्रकाशित कर रहे हैं जिसका गुथन श्री शांतिगुणनिधि ज्ञानगुणाकर प्रात स्मरणीय पूज्य प० गणेशप्रसादजी वर्णी द्वारा हुआ है—

गुरुवर्य ! आपकी चिरकालकी ज्ञान उपासना रूपी वृक्षसे जो मधुर फल प्राप्त हुआ है वह अवश्यमेव जीवोंके संसार रूपी आतापको दूर कर श्रेयस्पद प्राप्त करानेमें समर्थ है।

सद्गुरो ! प्रार्थना है कि व्यक्तिगतके लिये लगाया हुआ ज्ञानरूपी वृक्षसे जो मधुर फल प्राप्त हुआ है जिसका कण २ जीवोंको अपूर्व सुखास्पद है फिर क्या सर्व जीवोंके हितार्थ ज्ञान रूपी बगीचा निर्माण किया जावे तो अद्वितीय शांति प्रदायक सच्चा पथप्रदर्शक अनुपम स्थान नहीं होगा ? अवश्यमेव होगा। अत हमारा बारबार नम्र निवेदन है, कि हमारे पुण्योदयसे जबतक इस नश्वर शरीरमें ज्ञानमय ज्योति विद्यमान है तबतक अवश्यमेव दो शब्दरूपी अमर रस अपने ज्ञानसिंधुसे प्रदान कर ताकि हम सदृश अज्ञानी जीवोंको थोड़ेहीमें भेद विज्ञान ज्योतिसे अपना वास्तविक कल्याण मार्ग प्रगट होता रहे। (समाधि मरण पत्र पुंज)

धर्म-सहानुभूति—इन अनुपम ज्ञानपुंज पत्रोंको छपाने में जो जो जिज्ञासुओने हमको आर्थिक सहाय की हैं, वे सबको धन्यवाद है और सबसे अधिक धन्यवादके पात्र तो है ब्र० श्री छोटे लालजी और श्रीयुत लाला त्रिलोकचन्द्रजी कि जिन्होने अपने पासके सग्रहित किए हुए पत्र हमे देकर इसे प्रसिद्ध करानेमे सहायता की है।

इस **"आध्यात्मिक पत्रावलि"** का मनन करअपने शुद्ध स्वरूपका अनुभव हो ऐसी भावना सह इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हू।

श्री कलकत्ता
पर्यूषण पर्व
स० १९९७ } **प्रकाशक।**

ॐ

* श्री वीतरागाय नम *

आध्यात्मिक पत्रावलि

"ईसरी"

श्रीयुत बाबाजी योग्य इच्छाकार

महाराज, आपका निरन्तर समाधिमरण है, काय और कषायके कृश करनेको ही सल्लेखना कहते हैं, सो आपके निरन्तर हो रहा है, कायकी कृशताकी कोई आवश्यकता नहीं, यह पर वस्तु है, इसको न कृश ही करना और न पुष्ट ही करना, अपने आधीन नही, हा, यह स्वाधीन वस्तु है, जो अपनी कषायको कृश करना, क्योंकि इसका उदय आत्मामें होना है। और उसीके कारण हम कृश हो जाते हैं। अर्थात् हमारे ज्ञान-दर्शन घाते जाते हैं। और उसके घातसे ज्ञानदर्शनका जो देखना जानना काय है, वह न होकर इष्टानिष्ट कल्पना सहित देखना जानना होता है। यही तो दु खका मूल है। अत आप त्यागकी मुख्यता कर शरीरकी कृशतामें उद्यम न कीजिये। क्योंकि आपकी वृद्धावस्था हैं। काय स्वयमेव कृश हो रही है।

रही कषाय कृशकी कथा, सो उसके अर्थ निरन्तर चिद्रूपमें तन्मयता ही उसका प्रयोजक है। सो आप कर ही रहे हैं। औदयिक भावोंका रुकना तो हाथका बात नहीं किन्तु औदयिक भावोंको अनात्मीय जान उनमें हर्ष-विषाद न करना हा पुरुषार्थ है। आप विशिष्ट पुरुष हैं। आपको क्या उपदेश लिखूं? परन्तु जो कुछ आपने मुझे दिया वही आंशिक रूपसे आपकी भेट करता हू। आपने लिखा—समागम अच्छा नहीं, सो महाराज! मेरी अल्पमतिके अनुभवसे अब आपको उस स्थानको छोडकर अन्यत्र जाना सुविधाजनक न होगा। जिस स्थान पर जाइये,वही यही बात पाओगे फिर जहा अनुकूल साधन हों उन्हे त्याग कर अनुकूल साधन बनानेमें उपयोगका दुरुपयोग है। कल्याणका पथ आत्मा है, न कि बाह्यक्षेत्र। यह बाह्यक्षेत्र तो अनात्मज्ञोकी दृष्टिमे महत्व रखते हैं। चिरकालसे हमारे जैसे जीवोकी प्रवृत्ति बाह्य साधनोकी ओर ही मुख्य रही फल उसका यह हुआ जो अद्यावधि स्वात्म सुखसे वचित रहे। दैव योगसे आप जैसे निस्पृह पुरुषसे समागम हुआ और वह वृत्ति अब इस रूपसे वहिमुख जानेका नवोढावत् सकोच करने लगी। अब तो आप अल्पकालमे स्वर्गीय दीपचन्द्रवत् केवल शुद्ध रूपवत् हमको एकाकी असहाय छोडकर कुछ काल वैक्रियक शरीर धारण कर नन्दीश्वर आदि क्षेत्रोकी वन्दना कर असयममें ही कालयापन करेंगे। अत जब तक वह अवसर नहीं आया है तब तक उसी स्थान पर सयमोपयोगी क्रियामें हा

स्वकीय उपयोगको लगा दीजिये। तथा त्यागान्तरके विकल्प को हृदयसे निर्वासित कर दीजिये। हमारा इतना प्रबलतम भाग्य नही जो आपकी वैयावृत्त कर पुण्योपार्जनके पात्र हों। फिर भी अन्तरङ्गसे आपके त्यागगुणकी निरन्तर मुद्रा हृदयमें ऐसी दृढ रूपसे मुद्रित हैं, जो अहर्निश आत्माको पुण्य क्या वस्तु है, वीतराग मार्गका स्मरण करा रही है। मुझे तो दृढ विश्वास है जो आपके कुछ ही काल बाद मैं भी उसी दशाका पात्र हूंगा जो आपको इष्ट है।

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

आप लिखते है कि हम विषय कषायमें फस गये। यदि वास्तविक ज्ञानस यह जान लिया तब मेरी समझमें आप विषय कषायसे छूट गये। क्योंकि सम्यग्ज्ञानी कदापि कषाय का स्वामी नही, क्योंकि जिसके ज्ञान चेतनाकी उद्भूति हो गई वह औदयिक भावोका कर्त्ता नही, ज्ञाता है। अत अब आपका यह लिखना कि हम मूख शिरोमणि हैं, सर्वथा अनुचित है। जब हमन ससार बलुराके छेदनेके अथ सम्यग्ज्ञान परशुको हस्तगत कर लिया अब दु ख काहेका ? हां, यह अवश्य है अभी उसके चलानेकी सामग्रीके न होनेसे चलानेका अवसर नहीं सो यह कालकृत विषमता है, इस पर्यायमें जो शान्ति आत्माका लक्ष्य है उसका मिलना कठिन है। जितनी शान्ति मिल गई

उसीमें सन्तोष करो। सन्तोषसे ही सुख होता है। बाह्य पदार्थों के सम्बन्धको हेय जान कदापि उनमें अनुराग न करो। आत्मीय वस्तुकी ओर आओ। आखिर पर तो पर ही है। परके स्मरणसे आत्माकी विभूति पूर्ण विकाससे वंचित रहती है। चन्दन वृक्षके साथ, अग्निका सम्पर्क दाहजनक ही होता है। अत अपनेको कदापि हीन मत समझो इसका यह अर्थ न लगाना जो सिद्ध समझो-जो हो सो समझो। किसीके समक्ष अपनी लघुता प्रकट करनेसे क्या लघुता चली जाती है? लघुता दूर करनेके उपाय ही उसके दूर करनेके अस्त्र हैं। सिद्ध स्मरण सिद्धत्वका प्रयोजक नही किन्तु सिद्ध पर्यायके उत्पादक कारण ही उसके उपाय हैं। जो कुछ पर्यायसे बने उसे करो। चिन्ता करना अच्छा नही। बध छेदनकी चिन्ता बन्धका छेदक नही किन्तु चि ता न करना ही उसके दूर करनेका उपाय हे। मेरा मण्डलीसे अन्तिम यह समाचार कहना जो खातौली जैसी विद्वच्छैलीसे सुशोभित थी उसकी रक्षा करना।

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि।

इस ससारमें अनन्त भव भ्रमण करते सज्ञी पर्यायकी प्राप्तिका महत्व सामान्य नहीं। इसे प्राप्तकर आत्महितमें प्रवृत्ति करना ही इसकी सफलता हे (बुद्धे फल ह्यात्महितप्रवृत्ति) इसका अर्थ निश्चयसे बुद्धि पानेका फल यही है, जो आत्म

हितमें प्रवृत्ति करना । अब यहा विचार बुद्धिसे परामर्श करनेकी महती आवश्यकता है कि आत्महित क्या है ? और उसके साधक कौनसे उपाय हैं ? यदि इसका निर्णय यथार्थ हो जावे तब अनायास हमारी उसमें प्रवृत्ति हो जावे ।

साधारण रूपसे प्राणियोंकी प्रवृत्ति प्राय दु ख निवारणके लिये ही होती है । यावत् कार्य मनुष्य करता है प्राय उसका लक्ष्य दु ख न होना ही है । उसके उपाय चाहे विपर्यय क्यों न हों परन्तु लक्ष्य दु ख निवृत्ति है । अत इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्माका हित दु ख निवृत्ति है । अब हमें दुख का स्वरूप जाननेकी परम आवश्यकता है । आत्मामें जो एक प्रकारकी आकुलता उत्पन्न होती है वह हमें अच्छा नहीं लगती, चाह वह आकुलता उत्तम कार्यकी हो चाहे अनुत्तमकी हो । हम उसे रखना अच्छा नही समझते, चाहे वह जीव सम्यग्ज्ञानी हो चाहे मिथ्याज्ञानी हो, दोनों ही इसे पृथक् करना चाहते हैं । जब इस जीवके तीव्र कषाय उदय होता है तब क्रोध करने की उद्वेगता होता है और जब तक उस क्रोध विषयक कार्य नही सम्पन्न होता व्याकुल रहता है । कार्य होते ही वह व्यग्रता नही रहती तब अपनेको सुखी समझता है । इसी प्रकार जब हमारे मन्द कषायोदय होता है उस कालमें हमें धर्मादि शुभो-पयोग करनेकी इच्छा होती है । जब वह कार्य निष्पन्न हो जाता है तब जो अन्तरङ्गमें उसे करनेकी इच्छाने आकुलता उत्पन्न करदी थी वो शांत हो जाती है । इसी प्रकार यावत्

कार्य है उन सबमें मोही जीवकी यही पद्धति है। इससे यह निष्कर्ष निकाला कि सुखी तो जीव आकुलताकी जननी इच्छा के अभावमें होता है, परन्तु जिन जीवोंके मिथ्या ज्ञान है वे जीव उस कार्यके सम्पन्न होनेसे सुख मानते हैं। इसी मिथ्या भावको दूर करना ही हितका उपाय और अहितका परिहार है। ऐसा ही पद्मनन्दी महाराजने लिखा है —

यद्यद्देव मनसि स्थित भवेत्तद्देव सहसा परित्यजेत्।
इत्युपाधि परिहारपूर्णता सा सदा भवति तत्पद तदा॥

अर्थात् —

मनमें जो जो विकल्प उत्पन्न होंवें वो वो सर्व सहसा ही परित्याग देवे। इस प्रकार जब सब उपाधि पर्णताको प्राप्त हो जाती हैं उसी कालमें वह जो निजपद है अनायास हो जाता है। इसका यह तात्पर्य है कि मोहजन्य जो जो विकल्प हैं वे ससारके वर्धक ही हैं। इसी आशयको लेकर श्रीपद्मनन्दी महाराजने कहा है—

बाह्य शास्त्र गहने विहारिणी, या मतिर्बहु विकल्प धारिणी।
चित्स्वरुप कुल सद्म निर्गता, सा सती न सद्दशी कुयोषिता॥

बुद्धि जो चैतन्यात्मक कुल ग्रहसे निकल कर बाह्य शास्त्र रूपी वनमें बहुत विकल्पोको धारण करती हुई विहार करती है वह सद्बुद्धि नहीं किन्तु कुलटा स्त्रीके समान व्यभिचारिणी है।

इसका भी यही तात्पर्य है जो बुद्धि रागादि कलंक सहित पर पदार्थोंको विषय करनेमें चतुरा भी है तब भी पन्यांगनावत् वह हेया है। बेटी, जहातक बने अन्त शत्रु जीवके रागादिक हैं उन्हीके विजयका उपाय करना जप, तप, संयम शीलादि जो कार्य हैं उनका एतावन्मात्र ही प्रयोजन है। यदि इस मुख्य लक्ष्य पर ध्यान न दिया तब उसका लीपना चिकना न चाहना। हमारी श्री त्रिलोकचन्द्रादि सर्व सज्जनोंसे यथा योग्य अब हमने दीपावली तक पत्र देनेका त्याग कर दिया है। दादीजीसे हमारी प्रीति पूर्वक धर्म वृद्धि कहना।

श्रीयुत त्रिलोकचन्द्रजी दर्शन विशुद्धि—

बाईजीको दमा हो गया है। यदि योग्य दवा मिले तब आराम हो सकता है। आप किसी हकीमसे पूछकर नुसखा लिखना। उनको दमा गर्मीसे है। रात्रि दिन निद्रा नहीं आती। किन्तु धर्ममें दृढ श्रद्धा है शिथिलताका नाम नहीं। आप धर्ममें दृढ रीतिसे श्रद्धा रखना और भूल कर त्यागमें न पड जाना—जैसी कषाय घटै वैसे त्याग करना। मेरी लाला हुकमचन्द्र आदिसे दर्शन विशुद्धि। यदि बाईजीका स्वास्थ्य अच्छा होता तो मैं गर्मीमें वहीं रहता। मुझे आप लोगोंका समागम बहुत रुचिकर है--बाबाजीसे इच्छाकार—विशेष

फिर—उत्तरके लिये जवाबी पोष्टकार्ड या टिकट आना चाहिये।

श्रीयुत् त्रिलोक चन्द्रजीसे दर्शन विशुद्धि।

अब गर्मी बहुत पडने लगी है। बाह्य गर्मी—अभ्यन्तर गर्मी—शान्तिका लाभ होना अत्यन्त असम्भव है परन्तु कषाय वश भ्रमण करना पडता है। यहा भी भ्रमण—शान्ति कहा? जो सुख और शान्तिका लाभ एक स्थानमे और परके असगमे होता है, वह कदापि परके समागम और नाना स्थानोंमें नही होता।

अस्तु—पत्र इस पतेसे देना-गणेशप्रसाद वर्णी (मधुवन) तेरा पथी कोठी—पोस्ट पार्शनाथ, जिला—हजारीबाग

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आपका आया। समाचार जाने। आपकी विचार धारा पवित्र एव श्लाघ्या है। मैं उसे सादर स्वीकार करता हू, क्योंकि जो निवृत्ति मार्ग है उसका न कोई समर्थक है, न कोई निषेधक है। और न कोइ उस पवित्र भावका उत्पादक है। जिसके वह अभिनन्दनीय भावकी प्राप्ति हो गइ उसे ही हम सिद्धात्माका अ श समझते हैं। और उसको भव्य शब्दसे व्यप देश करते है। अब मैं उस अ शमें-जिसमे आपने मेरी सम्मतिकी

आवश्यकता समझी है देता हू। इस अधम कालमें वास्तविक धर्मात्माओंकी विरलता है तथा जो विरले हैं वे समाजमें नगण्य है। यद्यपि ऐसे व्यक्ति परापेक्ष नही होते और न लौकिक जनतोषके अर्थ उनका प्रयास ही रहता है। तथापि भगवदादि जिनको भी इस व्यवहार धर्मकी विरहतामें ६ मासका अन्त राय हुआ यह जिनाग म प्रसिद्ध है। मुख्योदय उनका था फिर भी निमित्त कारणकी त्रुटि दिखाई गई। आपने जो २०) रुपये मासिकका विचार किया इसके स्थानमें ३०) रुपये होने चाहिये ७००) रुपये तो पोष्टमें, १३००) रुपये निज पास तथा ४०००) रुपये सूद पर। अत थोडे दिन और कष्ट सहलो फिर धर्म साधनमें एकदम लग जाना। अभी कुछ कम काल दुकानमें दो। एक घटा कम दो। चार मास बाद फिर एक घंटा कम कर देना, इस तरह दो वर्षमें दुकानसे पिण्ड छूट जावेगा विद्या पढना अभीसे आरम्भ कर देना। अथवा जो आपकी इच्छा हो सो करना। क्योंकि पर पदार्थका परिणमन निजाधीन नहीं। प० अजितकुमारजी बहुत योग्य हैं, उसके यहा रहनेका प्रयत्न करना फिर ऐसा योग्य प० नहीं मिलेगा। मेरी अपनी सर्व साधर्मी मण्डलीसे दर्शन विशुद्धि। जो दोनों लडके हैं यहा प्रवेश करा दिये जावेगे। आषाढ बदिमे यहा नवीन पाठारम्भ होगा, उसी समय यहा आ जाना चाहिये। पं० अजितकुमारसे दर्शन विशुद्धि पौष सुदी ८ स० १९९१

——— ——

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी दर्शन विशुद्धि—

अभी यहा बहुत शीत पडता है। एकबार बाबाजीके दर्शनकी बडी इच्छा होती है, किन्तु मेरा शरीर भी अब शिथिल हो गया है। अत सहसा आनेको उद्योगी नही होता। फिर बैशाखमें आनेका प्रयास करूगा। आप जहा तक बन धर्म-ध्यानके कारणोंमें ही उपयोग लगाना। आजीविकाके साधनों का भूलकर भी उच्छेद न करना। क्योंकि यह काल अति निकृष्ट है। इससे आत्मप्रेमी जीवो को उचित है कि स्वातत्र्य आजीविकाका साधन रख। आप वास्तविक साधु हैं, अत हमारी बात पर विश्वास करना। मेरा श्रीत्रिश्वभर, उनके पुत्र तथा जो जो आपकी मण्डलीके हैं तथा मगतराय आदिको दर्शन विशुद्धि श्रीयुत अजितकुमारजी शास्त्रीको दर्शन विशुद्धि। निरन्तर स्वाध्यायमें दत्तचित्त रहना, बाबाजासे कहना खातौली और शाहापुरको छोडकर अन्यत्र न जावे।

श्रीयुत महादेवीजो योग्य—

बाईजीका स्वास्थ्य पूर्वसे क्षीण है। एक तोला भी अन्न नहीं लेती। थोडा अनारका रस व अगूरका रस लेती है। प्रतिदिन डोली पर बैठकर मन्दिर जाती हैं। नित्य नियम कर जल लेती हैं। किसीसे प्रेम नहीं। मुझे कुछ गद्गदता आ गई। कहने लगीं यही वस्तु ससार है-मेरी किसीसे ममता नहीं। मेरा

शरण मेरा आत्मा है, यही मुझे निश्चय है-व्यवहारमें पंच परम गुरु-समय पर नित्यनैमक्रिया करती हूँ। ४॥ बजेके बाद जल त्याग देती हूँ। कितनी ही वेदना हो पर हा नहीं। आशा तो १५ आना नहीं, १ आना है। क्योंकि उनका मुख ज्योंका त्यों है। कोई विकृति नहीं। धारणा भी ज्योंकी त्यों है। केवल सासकी वेदना है। अब कफ नही, ज्वर भी नहीं। बाबाजी महाराजसे प्रणाम कहना। महाराज, खतौलीको छोडकर अन्यत्र कहीं न जाना। मैं बाईजीको आराम होते ही एकवार आपके दर्शन फिर करूंगा। श्रीयुत् पसारी त्रिलोकचन्द्रजीसे तथा लाला विश्वम्भर हुकमचन्दजी तथा सवेडूमल आदि सर्वको दर्शन विशुद्धि। बाईके स्वास्थ्य लाभ होने पर अवश्य आऊंगा। जब तक मैं न लिखू किसीको न भेजना। श्रीयुक्ता दादीजी तथा डसकजाने वाली व गढीवालीसे दर्शन विशुद्धि—

श्रीयुत् महाशय त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। जहा तक बने शान्तिके साथ धीरताका भी अवलम्बन करो। इसमें महती शक्ति है, कल्याणकी भूमि है। बाह्य व्रतादिकोमे जब तक आभ्यन्तर भावका समावेश न होगा केवल कष्टप्रद ही होंगे। बाह्य जीवकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे जो दयाका उपयोग करते हैं उन्होंने दयाका स्वरूपको ही नही समझा। जहा पर यह प्राणी

अपनी आत्माको इस ससारम नाना आपदाओंसे वेष्टित देख कर वास्तविक ज्ञानी होता है। तब उसी जीवको अनेक विभावोंसे अपनी रक्षा करनेका सतत् प्रयास करना पडता है। प्रथम शत्रु तो इसका सर्वसे प्रबल और सर्व विभावोंकी रक्षा करनेवाला अनात्म विश्वास है, जिसको लोगोंने मिथ्या शब्दसे व्यपदेश किया है। जब तक यह अनात्मश्रद्धा इस प्राणीके ह तब तक पर पदार्थों मे इष्टानिष्ट कल्पनाकी पाशसे यह कभी मुक्त नहीं हो सकता। अत सब कार्यके प्राक् हमें दृढताके साथ स्वात्मबोध करना चाहिये कि मैं हू। जब तक अपनी सत्ताका निर्णय नही होगा तब तक अन्धकार मुष्ठि अभिघात के सदृश हमारे प्रयत्न होंगे। इत्यादि आपत्तियोंसे सुरक्षित करनेके लिये मैं हू यह अनुभव दृढ होना ही हमारे भावी कल्याणका निदान होगा। यद्यपि आबालगोपाल यह सबको विदित है कि हम है परन्तु मिथ्याज्ञानके आवेशम उसकी ओर लक्ष्य नहीं देते। अत सर्व प्रयत्नोंसे मुख्य प्रयत्न आत्मप्राप्ति की ओर होना चाहिये। बाह्य व्रतोंकी उतनी हा आवश्यकता ह जिससे आभ्यन्तरकी रक्षा हो, यदि आभ्यन्तरके अर्थ प्रयास नहीं तब सकल क्रिया काण्ड आडम्बरम परिणत हो जाता है। जहा तक बने सब बाह्य प्रयत्नोंका उद्देश्य स्वात्मोद्देश्य ही हो। स्वाध्याय रूप कायका मुख्य फल भी वही है। स्वाध्याय तथा ध्यानका फल भी वही है। आजीविकाका साधन आत्मघातक नही अन्यायोपार्जित धन स्वात्म स्थितिमें

बाधक है। जैसे मुनिको शरीर स्थितिके अर्थ भोजनादि क्रिया बध साधक नहीं, वैसे ही गृहस्थ सम्बधिनी न्यायो-पात्त क्रिया बधजनक नही, इसका यह तात्पर्य नहीं कि स्व-च्छन्दतासे प्रवृत्ति की जावे। विशेष तत्त्वकी मीमासा तो स्वयं होती है, पर तो निमित्त मात्र है। हमको पं० परमानन्दजीने कहा था कि आपका विचार शिखर यात्राका है। क्या यह सत्य है—उत्तर देना।

———

श्रीयुत महाशय लाला हुकमचन्दजी तथा लाला त्रिलोकचन्दजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। बाईजी दवाई प्राय नहीं लेती, शरीर अत्यन्त दुर्बल है। रात्रि दिन स्वास चलती है। किन्तु उनकी धारणा और स्मरणमें कोइ अन्तर नहीं है। धर्ममें सावधान रहना यह असाधारण बात है। बाईजीके कारण मैं यहा हू। अन्यथा एक मिनिट भी अब गृहस्थोंके समागममें नही रहना चाहता हू। बाबाजीके समागममे रहना अब मेरा नियम है। इनके स्वास्थ्य या अन्त होते ही सागर छोड दू गा, बाईजीका शरीर अत्यन्त क्षीण है। वह बाहर नहीं जा सकतीं। एक तोलासे अधिक भोजन नही होता। उन्होंने प्राय एक मासका बाह्य जानेका त्याग कर दिया है। तथा वह स्वयं बैठ भी नही सकती। अत अभी आपका आना अच्छा नहीं। आप

जो तिस्सामें हकीम हैं उनसे दवाई पूछ कर लिखना। और वह दवाई जो आपने लिखी थी यहा पर नहीं मिलती। पुरानी चीजें लाभकी नहीं। चिन्ताको बात नही, जो होना होगा, होगा। मेरा बाबाजीसे इच्छाकार। उन्हें बाहर न जाने देना। यहा पर कद्दू आदिका तेल नहीं मिलता। कल्याणका कारण तो परमात्मस्नेह है—

श्रीयुत महानुभाव बाबाजी योग्य इच्छाकार—

बाईजी समाधान हैं। शरीर अत्यन्त दुर्बल है। अन्न एक तोलासे अधिक नही। अस्थि पंजर रह गया है। २४ घंटा बैठी रहती हैं। ज्ञानमें कोई अन्तर नहीं, किसीसे ममत्व नही। नि शल्य है। यदि बच गई तब भी त्यागका विचार कर लिया है। यदि अन्त हो गया तब १ खड वस्त्रके सिवाय सर्व परिग्रह छोड दिया है। अथात् समाधिके समय १ वस्त्र रखेगी।

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

आपका पत्र नही आया। इसस पत्र नही देना था, परन्तु अन्तरगकी मनोवृत्तिने ऐसा करनेसे रोक दिया। आप सानन्द होंगे। स्वाध्याय ही परम तप है। अत उसका दृढ अध्यवसाय ही परमपदकी प्राप्तिका मुख्य उपाय है। निरन्तर व्यग्र नहीं रहना चाहिये। व्यग्रता ही बंधका जननी और बध

की सुता है। आप लोग जहा तक हो अब थोड़े दिन शान्तिसे वहीं स्वाध्यायमें चित्तको लगाइये। बहुत ही सुखद परिपाक इसका होगा। (क्षेत्रमें उत्कर्षता आत्माका परिणाम आधीन है।) हम लोग पर पदार्थमें उत्कर्ष और अपकर्षकी जन्म भर समालोचना करते हैं और हम कौन हैं? इसकी ओर दृष्टिपात नहीं करते। फल यह होता है जो आजन्म ज्योंके त्योंही नहीं, किन्तु छब्बेके स्थान दुबे हो जाते हैं। अत निरन्तर स्वकीय भावोंकी उज्वलता बनानेकी चेष्टामें यत्न पर रहना ही मोक्षाभिलाषी प्राणियोंका मुख्य कर्त्तव्य है। क्या परके उत्कर्ष कथा में पुराणोंको मनन करनेसे हम उत्कर्षके पात्र हो जावेंगे? नहीं, किन्तु उस मार्ग पर आरूढ होकर यदि हम मन्दगतिसे भी प्रति समय गमन करेंगे तब एक दिन वह आवेगा जो हमारी उत्कर्षताका कथाके एक दिन हमी दृष्टान्त होकर अनादि मत्र द्वारा मोक्षाभिलाषियोके स्मरण विषय होंगे। अब आप लोगों की अनादि अज्ञानजन्या कायरताको कृश करना ही पडेगा। कृश क्या अभाव करना होगा। इसमें हान पुरुषार्थ वालोंकी गणना नहीं। हमे दृढ श्रद्धा जब आत्मतत्त्वका है तब क्या दुष्कर है। (तदुक्तम्)

इन्द्र जालमिदमेवमुच्छलत्पुष्कलोच्चल विकल्प वीचिभि ।
यस्यविस्फुरणमेवतत्क्षण कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्मह ॥

इसका अर्थ समय सारके कर्तृकर्माधिकारमें देख लेना। सम्पूर्ण मण्डलीसे धर्म प्रेम और सलावा वाले पं० हुकमचन्द्रजीसे तथा

पं० शीतलप्रसादजीसे लाला विश्वम्भर दाससे दर्शन विशुद्धि। पर तो पर है, फिर क्या मैं पर नहीं, आप, आप पर नहीं। क्या श्री सिद्धादि पंच परमेष्ठी पर नहीं। परसे निजका क्या सम्बन्ध, जब ऐसी वस्तु मर्यादा है तब अपनी अल्प शक्तियोंके द्वारा जो यह भान हो रहा है, वहा चलो, तहा चलो, यह देखो, वह देखो, जो विकल्प जाल फैला है। एक बार दृढतम श्रद्धाको पैनी असि पटको जिससे मोहान्धकार मिट जावे और निजानन्द जो इसने छिपा रखा है, प्रगट हो जावे। बहुतसे महाशयों के श्रीमुखसे निरन्तर यह गाथा गाई जाता है, भाई ससार तो दु ख रूप है, इसमें सुख नहीं। अर्थात् दु ख ही है "अस्तु" तत्वदृष्टिसे इस विषयकी मीमासा कर निष्कर्ष सिद्धान्त विचारो, क्या है। यदि ससारमे दु ख ही है तब क्या यह नित्य वस्तु है, नही, क्योंकि दु ख पर्यायका विध्वस देखा जाता है और प्रयास भी प्राय प्राणियोंका निरन्तर इसके विरुद्ध विकासके अर्थ रहता है, इससे भी सिद्ध होता है यह वस्तु अस्थायी है। जब ऐसी वस्तु स्थिति है तब ससारमे दु ख है। इसका यह आशय है कि आत्माके आनन्द नामक गुणमे मोहज भाव द्वारा विकृति आगइ है वही आत्माको दु खात्मक वेदना कराती है। जैसे जब कामला रोग हो जाता है तब कामला श्वेत शखको भी पीत भान करता है, असलमे शख पीत नहीं। इसी तरह मोहज विकारमें आत्मा दु खमय प्रतीत विषय होता है, परमार्थसे दु खा नही। श्रीधर्मदासजीसे

हमारी दर्शन विशुद्धि कहना। और कहनाकी भाई धर्मदासजी यह रोग वेदना असातोदय निमित्त है। स्वाभाविकी नहीं। इसके उदयमे यदि समता रही तब यहा भी आनन्द और पर भवमें भी आनन्द। यह अल्पकाल अस्थायी वस्तु है, इससे आकुलित हो नित्य चिदानन्दको कलुषित नहीं करना चाहिये। आप तो धीर और विशिष्ट ज्ञानी हैं, कदाप इसके द्वारा चचल नही हो सकते। मुझे तो यह विश्वास है अब अवसर इस पिशाचिनीके अन्तका आ गया है। ऐसी विज्ञानमयी असि धाराका पान करिये जो इसको कुछ कालके लिये बेहोशी आजावे। जब यह शत्रु बेहोश हो जावे तब आप मोहज भावोंका क्रमसे न्यूनता करनेका प्रारम्भ कर दीजिये, जब तक वह फिर चैतन्यावस्थाको प्राप्त हो फिर उसी असिधारा द्वारा घायल करिये, अन्तमे कुछ पर्यायोंके बाद जब पूर्ण सामग्री प्राप्त हो जावे तब फिर इन मोहज भावोंको नाशकर सुखसे रहिये। अनाथिनी होकर आपसे आप उसका नाश हो जावेगा। श्री देवीजीको यदि पत्र डाले तब दर्शन विशुद्धि लिखना। बाबाजी सानन्द है और बुढिया मासे दर्शन विशुद्धि कहना।

श्रीयुत् त्रिलोकचन्द्रजी दर्शन विशुद्धि—

हम गया पहुंच गये, फा० बदी १२ को श्री १००८ गिरिराज जायेंगे। आप धर्मका मुख्य तत्त्व अपनेमें ही देखना।

निमित्त कारणों पर निर्भर न रहना। यह मूल मंत्र निरन्तर स्मरणीय रखना। राग द्वेष निवृत्ति जहा हो वही आत्मा परमात्मा है।

श्री त्रिलोकचन्द्रजी आशीर्वाद—

पत्र न आया, समाचार न जाने। संयमसे रहना ही सुख और शान्तिका सत्य उपाय हैं। ज्ञानार्जनका फल भी वही है परन्तु यह जीव अनादि कालीन वासनाओं द्वारा इस तरहका व्यग्र रहता है। जो परमार्थिक सुखका मार्ग है उसका पथिक बननेसे भयभीत रहता हैं। निरन्तर नाना प्रकार के अनुचित ओर अनुपादेय कार्योंमें अपने पवित्र ज्ञानका दुर पयोग कर देता है। अत सबस उत्तम यही उपाय है जो योग्य साधन कर स्वाध्यायमें काल लगाते हुए जीवन यात्राकी सफलता करना और आकुलता न करना। मेरा आप लोगोंसे सम्बन्ध इसी अर्थ है। पत्र देनेका कारण आपकी कुशलताका न मिलना है। श्री खचेडमल आदि सब सानन्द होंगे। श्री हुकमचन्द्रजी भी सानन्द होंगे। तथा लाला विश्वम्भरदासजी तथा लाला भगतरायजी आदि सबसे दर्शन विशुद्धि। ससार में सबसे बडा बधन मोह है। इसे मेटनेकी आवश्यकता है। परसे कल्याणकी आशा आकाशसे पुष्प चयनकी तुलनाके समान निरर्थक है। व्यर्थके झंझटोंमें पडना आयुकी निस्सारता है। केवल स्वाध्यायकी उत्तमता पर ध्यान रखो और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुकूल त्याग करो।

श्रीयुत महाशय पं० शीतलप्रसादजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। श्री हुकमचन्दजीका स्वास्थ्य अच्छा होगा। ऐसाही होना था। आप इन्हें सन्तोषका पान करावें। जो पर्याय होजावे उसपर विशेष ऊहापोह करना सर्वथा अयोग्य है। भविष्यका प्रयत्न करें। अतीतका प्रति क्रमण ही होता है। भावी जीवन सुधारनेके वक्त धीर और गंभीर तथा कार्यानुकूल प्रयत्न की महती आवश्यकता है। हम श्रेय-प्राप्तिके अर्थ निरन्तर आकुलताके पात्र रहते हैं। क्या करें? कहां जावें? किसकी सगति करें? इत्यादि शुष्क तर्कोंमे अतिदुर्लभता प्राप्त मनुष्य जन्मकी महत्ताको व्यथ ही भस्मीभूत कर देते हैं। इतना ही नहीं, आगामी उसकी प्राप्तिके अपात्र अपनेको बना देते हैं। अत मेरा तो आप लोगोंसे यह कहना है, जो इस सकल्प जालको उच्छेद कर सतत धीरता और वीरताके साथ रागद्वेष आदिकी सेनाका निर्भीक होकर ऐसा सामना करना चाहिये कि फिर वह सास न लेवे। जो शिल्पकार जिस महलको निर्माण करता है, उसका ध्वस करना उसे क्या कठिन है? तद्वत् यह रागद्वेष हमने अज्ञानसे ही उत्पन्न किये थे। अब इनके प्रलय करनेके लिये हमें विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं। केवल इतना जान लेना ही उनके नाश करनेका उपाय है। यह मानी हुई बात है। जिस वस्तुका हमको यथार्थ ज्ञान होगया उसका फल उपेक्षा ही है। वस्तुके जाननेका वास्तविक फल तो अज्ञान निवृत्ति है। यह त्यागमें

योग्य है, यह ग्रहण योग्य, यह उपेक्षणीय है, यह सर्व मोहके सद्भाव है और असद्भावमें ही प्रवृत्ति होती है। अत पदार्थोको जान कर यदि हमारे भाव निरन्तर यही कल्पना करते हैं कि कैसे हमारा कल्याण होगा ? तब हमारी समझमें नही आता हमारे ज्ञानने क्या किया ? अत सब कल्पनाओंको छोडकर निरन्तर स्वाध्यायमें कालका सदुपयोग कर शान्तिका अनुभव करिये। यह शान्ति अन्यत्र नहीं, सन्निहित ही है। अनादि कालसे इस आत्माकी इन पर पदार्थोंके सम्बन्धसे यह इस प्रकार की निर्बलता प्रकृति होगइ है जो निरन्तर पर वस्तु जातसे ही अपना कल्याण और अकल्याण मानता है। असिल में यह नही। कथचित् कम जन्य पराधीन दु ख और सुखमें यह सम्भावना हो सकती है। वास्तविक वहा भी यह तथ्य परीक्षामें उत्तीर्णताको नही पासकता किन्तु पारमार्थिक सुखमें तो इन पर वस्तुओके आलम्बन की गध भी नही। फिर हम ऐसे दुबल हो रहे हैं जो निरन्तर वही राग अलाप कर शुद्ध तत्त्वसे च्युत हो रहे हैं। पुरुषाथके समय कर्मोदयकी एकात वासनासे दूषितान्त करणवृत्तिके द्वारा उन्मत्त पुरुषके सदृश आलाप कर वस्तु स्वरूपके लोप करनेमें पुरुषार्थको चरितार्थ कर धन्यवादके पात्र होनेको प्रतिज्ञा करनेमें सकोच नहीं करते। ऐसे असिद्धाचार कहातक श्रेयोमार्गके पोषक हो सकते हैं। अत मेरी आपके विषयमें यही सैद्धान्तिक सम्मति है,—जो आपकी समस्त मण्डली किसी विशेष अवसर पर हस्तिनापुर

जाकर तत्त्व विचारमें निमग्न होकर स्वयं निर्णय कर रागद्वेष के निपातका उद्यम करे। स्वय विचारधारा उसी योजनामें लगा देना ही श्रेयो मार्ग ी रुचि है। रुचि क्या आंशिक श्रेयोमार्ग ही है। यहा पर अब १२ मास और मेरा रहनेका निश्चय हो गया है। सूरजमलने ६००००) का मकान जिसका भाडा १००) मासिक है शान्तिनिकेतनके रक्षार्थ दे दिया। मेरा विचार अब गृहस्थोके समुदायमें रहनसे भयभात होता है। आपकी जो मण्डली है उसके यावत् सदस्य हैं, सर्वसे धर्म-प्रेम।

श्रीयुत् लाला त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

संसारमें सबसे प्रबल बन्धन करनेवाली लोभ कषाय है। उसीके द्वारा जगत एक दूसरेको वश करनेका प्रयत्न करता है यद्यपि आप और हम सर्व साधारण इस बातको जानते हैं कि परिग्रह सबसे अधिक सतापकारी वस्तु है, फिर भी जब परस्पर बात करेंगे, तब यही सार उसका होगा। काल निकृष्ट है। कुछ अर्जन करके ही धर्म साधन अच्छा होगा। सब दान मत कर दो। अन्यथा कोई सहायक नहीं, सब हसी उडायेंगे। मैंने आजन्म एक पैसा भी अजन नहीं किया। श्री स्वर्गीय बाईजीका द्रव्य द्वारा निश्चित रहा। फिर भी लोगों का यही कहना था कि देखो हाथ संकोच करो। अन्यथा पश्चात्ताप करना होगा। बाईजी पैसेकी रक्षा करो, पं० जी

तो कुछ विचार नहीं करते, तुम तो कमाती नहीं। यही काम आवेगा। बाईजीका उत्तर था, जबतक हम हैं भैयाकी इच्छा जो करें, हमारी पर्याय बाद तो इस धनकी रक्षा होना नहीं। फिर भी ८०००) रुपया नकद छोड गई। वही हुआ जो उनने कहा था, मैंने उनके बाद सब दे दिया। ५००) रुपया शेष था। वह भी बरूआ सागर की पाठशालाको दे दिया। यह सब किया। परन्तु शान्तिका उदय नहीं हुआ। होता कहासे ? क्योंकि अन्तरगसे लोभ कषायका अभाव नहीं हुआ। जबतक परिग्रह-लिप्सा है, तबतक लोभका त्याग नहीं। विषय सेवनमें अभिलाषा मूल है। यदि विषय सेवन नहीं भी करे और अभिलाषाका त्यागी नही, तब विषयका त्यागी नहीं, इसी तरह प्रमादके सद्भावमें जीवोंके घात न होने पर भी अहिंसक व्यपदेशको प्राणी नहीं पा सकता। तात्त्विक मूर्च्छा-के अभावमें ही शान्तिका उदय होता है। दान करनेका यही उद्देश्य था जो हम मूर्च्छाके अभावका फल आस्वादे। यहा उल्टा होता है। दानके करनेमें द्रव्य तो जाता ही है, साथ ही मान कषायकी पुष्टि हो जाती है। इसी प्रकार धर्म पोषक जितने भी कार्य आचार्योंने प्रतिपादन किये हैं, सबका सार अन्तरंग शान्ति था। फिर भी धार्मिक कार्य करके भी हमें शान्तिकी आस्वाद नहीं आता। आवे कहासे ? हम जो कार्य धर्मका करते हैं, उसमें हमारा अभिप्राय कषाय पुष्टिका हो जाता है। इसीसे महर्षियोंने कहा है,—'जो कार्य करो उसको

यह बुद्धिको न आने दो—" ऐसा होना असम्भव नहीं। तथाहि—

> त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते, नेति प्रतीमो वयम्
> किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि कर्मावशेनापतेत्।
> तस्मिन्नापतिते त्वकम्प परमज्ञान स्वभावेस्थितो,
> ज्ञानी किं कुरुतेऽथकिं न कुरुते कर्मेति जानाति क ॥

परन्तु यह बात बनानेसे नहीं बनती, यह तो कर्म कृत नहीं किन्तु क्षयोपशम जन्य है। क्षयोपशम जन्यसे तात्पर्य मोहनीय कर्मके उपशमादिसे है। यद्यपि हमारा कर्तव्य पुरुषार्थ करनेका है। वस्तु प्राप्ति भवितव्यताधीन है। फिर भी निरन्तर आगम ज्ञान ही उसका मूल है। देखो—

> शुद्धद्रव्य निरूपणार्पित मते स्तत्त्वं समुत्पश्यतो,
> नैक द्रव्य गतञ्च कास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित।
> ज्ञान ज्ञेयमवैति यत्तुतदयं शुद्धस्वभावोदय,
> किं द्रव्यान्तर चुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जना ॥

अर्थात् तात्त्विक पदार्थोंको जाननेवालोंका यह कहना है कि एक द्रव्यके अन्तर गत अन्य द्रव्यका प्रवेश नही। ज्ञान ज्ञेयको जानता है, यह उसके शुद्ध स्वभावका ही उदय है। द्रव्यान्तर उसमें प्रवेश होगया, ऐसा नहीं। फिर भी द्रव्यान्तर चुम्बन द्वारा आकुलित बुद्धि होकर यह सामान्य जन तत्त्वसे च्युत होकर अनन्त संसारकी यातनाके पात्र बनते हैं। परिग्रहका संग्रहही हमें दु:खदायी है। परन्तु इतनी हीन शक्ति है जो

उसके त्याग करनेमें असमर्थ हैं। बाईजीके सामने हमने अनेक बार छोडनेका प्रयास किया, किन्तु बाईजीने यही उत्तर दिया, जो तुम्हारी इतनी विरक्तता नहीं, व्यर्थको दुखी होंगे। हमारे जीवन बाद छोडना। परन्तु आज वह शब्द इतने मार्मिक प्रतीत होते है जो उपदेष्टाका कार्य कर रहे है। अत हमारा आपसे यही कहना है जो सहसा त्याग न करना। योग परिग्रह बाधक नही प्रत्युत साधक ही है। हमारी प्रवृत्ति देखो जो निजका तो छोड दिया। परन्तु फिर भी संग्रह नहीं छोडा। कहीसे घी कहीस कुछ इत्यादि। अनर्थ परपराका सम्बन्ध नहीं छूटता। लाला हुकमचन्द्रजी व श्री विश्वम्भरदास व लाला खचेडूमल व लाला भगतराय आदि सब सज्जनोंसे दर्शन विशुद्धि। श्रीमान पं० धर्मदासजीसे दर्शन विशुद्धि, योग्य पुरुष है, तात्त्विक दृष्टि है। लाला बाबूरामजी आदिसे यथा—योग्य। बाबाजी बनारस आगये।

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

मेरा सर्व सज्जनोंसे यथा योग्य कहना। मैंने पोष मासमें २५ दिनका मौन लिया था। बडे सानन्दसे काल गया। अब माघ वदी १ आजन्मके लिये एक दिनका मौन और एक दिनका बोलना रखा है, परन्तु मार्गमें यह नियम नही, जहां रहू

वहां लागू है। क्षेत्र वन्दनामें नहीं, संसारमें मनुष्यकी चेष्टा, परके कल्याणको रहती है, निजकी ओर दृष्टि बहुत ही कम सज्जन देते हैं यह लिखना भी अनवसर है।

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

बेटी, ससारमें शान्ति नहीं सो ठीक है, परंतु शान्तिका मूल हम लोक ही तो हैं। क्या पुद्गल कर्म शान्तिका बाधक है ? हमारी अज्ञानताने यह सर्व असत् कल्पना कर यह ससार बना रखा है। वास्तविक तो वस्तु अशान्तिमयी नहीं औपाधिक परिणामों ने यह सब उपद्रव बना रखा है। अत जहा तक बने उन औपाधिक भावोंका यथार्थ ज्ञान करना ही मोक्ष मार्गकी प्रथम सीढी है। औपाधिक भावोंके त्यागके बिना हम सम्यग्दर्शनके पात्र नही हो सकते। अत ससारसे सवेग होना, होना ही श्रेयस्कर है। क्या लिख ? पदार्थ तो इतना सरल है जो एक मिनट तो बहुत, एक सेकण्डमें अव-बोधका विषय हो सकता है, परन्तु वचनकी प्रचुरतासे वर्षोंमें उसका यथार्थता आना दुर्गम है।

श्रीयुक्ता देवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

मैंने पत्र बनारसको लिख दिया है। आशा है उत्तर आपके पतेसे पहुंचेगा। यदि २) रु० की जगह ३) रु० दिये जाव तब अच्छा है। मैंने दो रुपयेके लिये लिखा है। बेटी, ससारमें

सर्वत्र ही अशान्ति है। धन्य है उन महापुरुषोंको जो इस महती अशान्तिमें शान्तिके पात्र हो जाते हैं। मूल कारण शान्तिका पर पदार्थसे परणति हटावे, हटानेका उपाय, उनके न्यून करने का प्रयास है। जितना अल्प परिग्रही होगा उतना ही सुखी होगा। परिग्रह ही सर्व पापोंका निदान हैं। इसकी कृशता ही रागादिकके अभावोंमें रामबाण औषधि है। बेटी, जहा तक बने रागादि दोषोंसे ही अपनी रक्षा करना। यह अवसर अति दुर्लभ हैं, मनुष्यायुकी प्राप्ति, शरीरादिककी नीरोगता उत्तरोत्तर दुर्लभ जान सानन्द चित्तसे इन शत्रुओंको विजय कर स्वात्म लाभ करना।

श्रीयुत बाबाजी महाराज योग्य इच्छाकार—

मैं कार्तिक बाद नियमसे शिखरजी चला जाऊ गा। पहुचनेका पत्र गयासे दू गा। इतनी मेरी प्रार्थना हैं, जो खातौली को छोडकर भूलसे भी अन्यत्र जानेका विचार छोड़ देना। वहा जैसा धर्म साधन होता है, अन्यत्र कारण कूट उतने अच्छे नहीं हैं। जितनी शुद्धता भोजनकी श्री महादेवीजीके यहा होती है, उतनी अन्यत्र होना दुर्लभ है। आपका शरीर अति दुर्बल है, ऐसी अवस्थामे अन्यत्र जाना सर्वथा ही अनुचित है।

श्रीयुक्ता महादेवीजीको दर्शन विशुद्धि—

हमारा तो यही कहना है, जिसमें आपको शान्ति मिले और रागादिक उपशमन हों, वही कर्त्तव्य है। इसकी ओर दृष्टि देना ही इस जीवनका लक्ष्य है। तुम्हारी प्रवृत्ति उत्तम है। हमारा तो ध्येय यही है, इसीसे हमने सर्व प्रकारकी सवारी छोड़ी है। आप जहा तक बने बाबाजीकी पर्याय तक वहीं रहने की चेष्टा करना। क्योंकि आपके द्वारा जो वैयावृत्त होगी वह अन्यत्र न होगी। धर्मके मूल आशयको जाने बिना धार्मिक भाव व धर्मात्मामें अनुराग नहीं हो सकता। हमको एक शल्य थी, वह भी निवृत्त हो गई, अर्थात् बाईजोकी ननद वह भी परलोक पधार गई। अब तो कुटुम्बी कहो चाहे पिता कहो बाबाजी महाराज हैं। मैंने शिखरजी जानेका निश्चय कर लिया, नहीं तो नहीं आता। अब देखें कब बाबाजीसे मिलाप होगा। दादीजीसे दर्शन विशुद्धि।

— —

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

अपनी मा तथा भावी व भाईसे धर्म स्नेह पूर्वक दर्शन विशुद्धि। बुढ़े फल आत्महित प्रवृत्ति। वृद्धि पानेका यही फल है, जो आत्महितमें प्रवृत्ति करना। आत्महित क्या है? वास्तव दृष्टिसे विचारा जावे तब दुःख निवृत्ति ही है। आबाल अगत है, इसीके अर्थ चेष्टा करता है। दुःख पदार्थ क्या है? इस पर सूक्ष्म दृष्टिसे देखो तो यही निष्कर्ष आपको मिलेगा,

आवश्यकताओंकी माला ज्ञानकी आवश्यकता क्यो होती है ? हम अज्ञानसे नाना प्रकारकी यातनाओंके पात्र होते हैं। ज्ञान होने पर वे यातनाए जो अज्ञान अवस्थामें हमे बाधा दे रही थी अब नहीं देतीं। हम अर्हद्भक्ति किस अथ करते हैं ? हमारी रागादिक प्रणति ऐसे पदार्थोंमें न जावे जो हमें मोक्ष मार्गसे च्युत कर देवे तथा तीव्र रागद्वेषकी ज्वाला हमें दग्ध न कर देवे, एतज्जन्य दु खकी निवृत्तिके अर्थ ही हमारा प्रयास है। हम जो दान देते हैं उसका तात्पर्य यही हैं जो हम लोग कषाय से दु खी न होवे। हम चारित्रको अगीकार करनेका जो प्रयास करते हैं उसका भी मूल तात्पर्य यही है, जो हम रागद्वेषकी कलुषतासे क्लेशित न हों। लौकिक कामोमें देखो हम भोजन इस अर्थ करते हैं जो क्षुधाजन्य पीडा शात हो। जब हमें कषाए पीडा उपजाती हैं तब अपना अकल्याण करके भी उस कषायकी पूर्ति करते हैं। यद्यपि विचारसे देख तब सुखका मूल उस कषायकी हीनता है परन्तु हमें इस प्रकारका मिथ्याज्ञान है जो हम कषायमें सुख मानते हैं, क्योंकि सुख तो कषायके अभावमें है। जैसे देवदत्तको यह कषाय उपजी जो यज्ञदत्त हमे नमस्कार करे, जब तक वह नमस्कार नही करता तब तक देवदत्तको अन्तरंगमें दु ख रहता है। एकबार यज्ञदत्तने उसे दु खी देख अपनी हठ छोड देवदत्तको नमस्कार कर लिया, इस पर देवदत्त कहता है मेरी बात रह गई। और देख, अब मैं उस कषायके होनेसे सुखी हो गया। इस पर यज्ञदत्त कहता है कि

तुम भ्रममें हो तुम्हारी बात भी गई और कषाय भी गई। इसीसे तुम सुखी हो गये। जब तुम्हें इच्छा थी कि यह नमस्कार करे और मैं नही करता था तब तुम दुःखी थे। मेरी हठ थी कि मैं इसे क्यों नमूं? सो मैं भी दुःखी था। अब मेरी हठ मिटी तब मैंने नमस्कार किया। उससे जो तुम्हारी इच्छा थी कि यह मुझे नमस्कार करे, दुख दे रही थी मिट गई। अत तुम इच्छाके अभावमें सुखी हुए। मैं भी हठके जानेसे सुखी हुआ। अत ऐसा सिद्धान्त है कि अभिलाषाका जाल ही दुःखका मूल कारण है, तब निष्कर्ष यह निकला सुख चाहते हो तब इच्छाओंको न्यून करो यही सदेश आत्माका है। अब वैशाख सुदी १५ तक पत्र न दूगा।

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

जिस जीवकी आयु एक कोटि पूर्वकी है और उसने आठ वर्ष बाद केवली या श्रुतकेवलीके निकट क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गई,

पढ मुत समिपे सम्मेसे सति ये अविरदादि च
तारि, तित्थयर बन्धपारम्भयाणरा केवली दुगंत्ते।

इस गाथाके अनुकूल उसने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध प्रारम्भ कर दिया। आठवें अपूर्व करण तक बराबर यह बध होता रहा अन्तमें उपशम श्रेणी माडकर ग्यारहवें गुणस्थानमें आयु पूण

होकर ३३ सागर सर्वार्थ सिद्धिमें आयु पायी, वहां भी बराबर बंध होता रहा, वहांके बाद फिर यह कोटिपूर्वका आयुवाला मनुष्य हुआ वहां भी अपूर्व करण तक यह प्रकृति बंधती रही, बादमें लोभ नाशकर क्षीण मोह अन्तरमुहूर्त बाद केवली हुआ। तेरहवें गुणस्थानका काल पूर्ण कर चतुर्दश गुणस्थानका समय पूर्णकर मोक्ष हुआ। अत इस कालकी विवक्षा न की और न पूर्व अपूर्व करणके बाद कालकी विवक्षा न की। सागरोंके सामने यह कोई काल नही। तारतम्यसे बिचारा जाय तो यह अन्तर अवश्य है। तीर्थंकर प्रकृतिवाला यदि पंच कल्याणधारी होनेवाला है तब तो इस जन्मसे २ जन्म धारण कर मोक्ष जावेगा और जो २ कल्याणक व ३ कल्याणधारा होते है वे उसी भवसे मोक्ष जाते हैं। यदि सम्यक्त्वके पहिले नरकायुका बध कर लिया हो तो तब तीसरे नरक तक जा सकता है। तीथकर प्रकृतिके बध होनेके बाद आयु ब ध होवे तब नियमसे देवायु ही का बध होवे। जो दया भाव विपरीत अभिप्रायसे होवे तब तो नियमसे दर्शन मोहके चिन्ह है। सामान्य मोहके उदयमें करणा भाव मिथ्यादृष्टिओंके भी होता है। और सम्यग्दृष्टिओंके भी होता ह। सम्यग्दृष्टिके तो पचास्तिकायमे लिखा है। जब ऊपरि तन गुणस्थानमें चढनेकी अशक्यता है तब अपने उपयोगको इन कार्योंमें लगा देता है। मिथ्यादृष्टि अहम् बुद्धिसे काय करता है। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तब करुणा भाव चारित्रादिके उदयसे हा होता है। किन्तु जब मिथ्या दशन

उदय मिश्रित चारित्रोदय होता है, तब दर्शन मोहके उदयका कह दिया जाता है। इसी तरहसे वैरभाव या मित्रभाव सर्व चारित्र मोहके उदयमें होते हैं। परन्तु मिथ्यात्व आदिमें सब मिथ्या दर्शनके सहचारी कह दिये जाते हैं। वैरभाव द्वेषसे होता है। अत पञ्चाध्यायीमें यह कह दिया कि मिथ्यात्वके बिना यह नहीं होता। किसीको वैरी मानना जैसे मिथ्यात्व का अनुभावक है, वैसे किसीको मित्र मानना भी मिथ्यात्व का अनुभावक है। अत दर्शनमोहके उदयमें न करुणाभाव होता है न वैरभाव। ये दोनों भाव चारित्र मोहके उदयसे ही होते हैं।

श्रीयुत् महाशय त्रिलोकचन्द्रजी दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने, आजतक इस ससारमें किसी भी तत्त्व ज्ञानीने बाह्य ऐसा उपाय नहीं निकाला जो उसका आश्रय लेकर ससार यातनाओंसे पीडित आत्मा शान्त हो जावे। हमलोग निरन्तर इसी खोजमें लगे रहते हैं कि कोई ऐसा अमोघ बाण मिल जावे जो कर्म शत्रुको चूर्णकर हमें शान्ति मार्गका फल तत्काल मिल जावे, निरन्तर इसी अन्वेषण में लगे रहते हैं। तथा सहस्रावधि पुस्तकें और महात्मा ओंको ससर्ग करते हैं। अन्तमें निराश होकर या तो अश्रद्धा करते हैं या यह मान लेते हैं कि अभी हम अज्ञानी हैं यह सर्व हमारी भूल है, क्योंकि वास्तवमें बाह्यमें कोई मार्ग ही नहीं,

जो महापुरुष बताते। महापुरुषोंने शान्तिका मार्ग आत्मामें बताया है। हम पुस्तकों और बाह्य तीर्थों में खोजते हैं। अब आपही बतलाइये क्या आप इस तरह व्यर्थ प्रयासकर मोक्ष मार्ग प्राप्त कर सकेंगे? नही, इन निमित्तों-की मुख्यताको गौणकर निजमे निहित जो मार्ग है, उसे प्रकट करो, बाह्य वस्तु उतनी बाधक नही जितनी कायरता घातक है। हम निरन्तर व्यर्थकी चिन्ता करते हैं। इसमें कुछ सार नही।

क्या दुकान और खतौली छोडनेसे मोक्ष मार्ग मिल जावेगा? आजकल प्राय वचक लोग ससारमे हो गये है। जब कहीं जाओगे पता चलेगा। ऐसी उत्तम शैलीको छोड कर व्यर्थके झगडेमे पड जाओगे और अन्तमे, पश्चात्ताप हाथ रह जायगा। अत दुकानका परिमित समय नियत कर शेषकाल धर्म-ध्यानमे लगाओ, अथवा जो बडे २ विद्वान हैं उनसे पूछो भाई साहिब! आपलोग शान्तिका उपाय बतलावे। जो वे बतावे उनसे कहना आप भी इसपर चलें, तब यही उत्तर मिलेगा (चारित्र मोहका उदय है) अस्तु, यदि आपके परिणाम विरक्त हैं, तब वहीं उनका सदुपयोग करो। जो अतीत काल गया जाने दो। जो वर्तमानमें परिस्थिति है उसपर चलो। आप और हमलोगोंकी यह चेष्टा रहती है कि बिना त्याग मुनिदशाकी शान्ति आजावे। यह चेष्टा उष्ण जलमें शीत स्पर्शकी चाहके तुल्य है। अत सिवाय दुखके और क्या

मिलेगा ? अत पर्याय पर दृष्टि देते हुए परिणामोंकी शान्ति-को मिलान करो, अनायास शान्त हो जावेगा। हमको भी इसी तरह व्याकुलता रहती थी कि हा! कुछ नहीं हुआ परन्तु अन्तोगत्वा यही निश्चित सिद्धान्त कर लिया, करते जाओ, एक दिन अवश्य उत्तम फल मिलेगा (कारज धीरै होत है काहे होत अधीर। समय पाय तरुवर फलै केतिक सींचो नीर)। मेरी श्री प० शीतलप्रसाद व श्री हुकुमचन्द, श्री पं० धर्मदास व लाला विश्वम्भरदास, व लाला बाबूलाल, व श्री खचेड़मल आदि सज्जनोंसे दर्शन विशुद्धि। (मण्डलीको सुना देना)।

लाला त्रिलोकचन्द्रजी दर्शन विशुद्धि—

हम गर्मीकी बाहुल्यतासे यहा आगये, तथा आजकल वहा पर श्री दिगम्बर जयकीर्ति मुनि भी आए हैं। साथमें मुनि क्षुल्लक आर्य्या ब्रह्मचारिणी आदि परिवार भी है। अब कलि का प्रभुत्व है। लोगोमें जो विवेक है उसका वर्णन करना बुद्धिगोचर नहीं। भगवद्दिव्यज्ञानमें जो देखा है, होगा, इसी-में सतोष है। आत्मगत दोषोंको पृथक् करनेकी चेष्टा ही श्रेयस्करी है। अन्यकी समालोचना केवल पर्यवसानमें दु ख-स्कारका ही हेतु हो जाती है। यदि हम लोग निज ओर देखें तब इतने परिश्रमको आवश्यकता है जो परके गुण दोषोंको

जाननेका अवसर ही न आवे। जब स्वात्म रसका आस्वाद आजाता है तब अन्य रसका विचार ही नहीं रहता। परन्तु यहा तो अनादिसे पदार्थान्तरकी समालोचनामें ही यह जीव अपना गौरव समझ रहा है। उसे पृथक् कर अब तो स्वात्म हितमें ही रत होना श्रेयोमार्ग है। अभी कुछ दिन यहा रहने का विचार है। यहा गर्मी कम है। लू नहीं चलती। सत्सग का अभाव है, भाग्य भी तो मद है, सत्सगका लाभ पुण्योदयसे होता है, पुण्योदय मद कषायसे होती है। यहा तो अन्तरङ्गमें क्रोधाग्नि जल रही है। शान्ति कहासे आवे? अस्तु, आत्माकी तथ्य श्रद्धान् क्रोधाग्नि क्या अनन्त मिथ्यात्वको शान्ति करनेमें समर्थ है परन्तु वह तो हो तब तो बात बने। होना कोइ कठिन नहीं है, केवल उद्देश्य बदलना है। सर्व मडली-से दर्शन विशुद्धि। यदि बाबाजी हो तो इच्छाकार।

श्रीयुत लाला शीतलप्रसादजी योग्य दर्शन विशुद्धि।—

सर्वसे उत्तम कल्याण उन्ही जीवोंका होता है जो पर पदार्थके गुण दोष विचारनेमें उपयोगको नहीं भ्रमाते। बन्धु वर! अन्यकी कथा तो बन्धजनक है ही परन्तु अर्हत् भगवानकी कथा भी वही है। कथाके श्रवणादिसे रुचि होती है इतना ही लाभ है, उस हुविकालमें जिन महानुभावोंने राग द्वेषकी श्रृङ्खलाके तोडनेका अधिकार प्राप्तकरलिया वही

मोक्षके पात्र होते हैं। आप स्वयं विज्ञ हैं। यातायातमें कुछ लाभ नहीं। अबकी बार यहाँ पर कई ऐसे विरुद्ध कारण हैं, जो आप लोगोंको अनुकूल न होवेंगे। दस्सोंकी बाबत हमसे कुछ नहीं पूछना। आपसे मेरा यही कहना है जो ज्ञानाभ्यास-का फल रागद्वेषकी कृशता है, अत उसकी ओर लक्ष्य रखना। लाला मङ्गलसैनको भी सान्त्वना देना। जीव अपने ही परिणामोंकी कलुषतासे ससारी है। कलुषता गई, संसार गया।

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी योग्यदर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने, वचन तो किसीके हो, वचन ही हैं, अच्छे, बुरे यह भी परजन्य कल्पना है। यह कल्पना जिस दिन पृथक् हो जायगी, अनायास कल्याण हो जायगा। एक स्वरूप समवस्थिति बिना हमारी यह दुर्दशा हो रही है। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श इनमें आत्मधर्मका लेश नहीं। अत—एव इन्हे जानकर हित कल्पना जैसे मिथ्या है, वैसे अहित कल्पना भी मिथ्या है। हिताहितका सम्बन्ध आत्म परिणामोसे है। जहा पर आत्म परिणामोंमें परको परतन्त्रताका अवलम्बन है, वहा तक हितकी गन्ध नही। इसके विरुद्ध जहा पर स्वपरि-णामकी स्वच्छता है वहाँ निजहित है। जैन शास्त्रोंको मनन कर इस अन्तस्तत्त्व तक अवश्य दृष्टिपात करना चाहिये।

[illegible] ही यथार्थ कल्याणका पथ है। मर्यादा रहित काल चला गया और इसी तरह स्वात्मदृष्टि अवबोध बिना जगत् मात्रके प्राणी इसी रूपसे काल व्यय कर रहे हैं। एकबार भी यदि प्राणी अपनी ओर लक्ष्य देवे कल्याणका पात्र हो जावे, परन्तु जब उस ओर आता ही नही तब क्या सुख पावेगा? कदापि नहीं! मेरी सब मण्डलीसे दर्शन विशुद्धि। मेरी सम्मति तो यह है कि इन परके विकल्पोंको छोड शास्त्रका मनन ही हितकर है।

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शनविशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते हैं, फिर भी आप, न जाने, क्यों व्यग्र हो जाते हैं। कल्याणका पथ त्रैलोक्य में नही किन्तु अपनेमें है, निमित्त कारणोंमें कार्य नहीं होता, कार्यकी जननी उपादान भूमि है, व्यग्रता तो आत्मसाधक नहीं। मनो, वचन, कायके व्यापार व्यग्रताके उत्पादक नहीं व्यग्रताकी उत्पादक कषाय ज्वाला है। और हम बाह्य पदार्थोंमे व्यर्थ राग द्वेष कर बैठते हैं। घरसे बाहर जानेमें आजकल सिवाय व्यग्रताके आत्मलाभका लेश नहीं होता। (दूरके ढोल सुहावने,) त्यागकी भव्यता इसमें है जो आकुलता न होवे। आकुलता न होनेका मुख्य कारण स्वरूप श्रद्धा है। जहा स्वात्मश्रद्धान हुआ आपसे आप शान्ति रूप परिणाम हो जाता है। क्योंकि जब यह देखता है, इन बाह्य पदार्थोंमें न व

ज्ञायक सम्बन्धको छोड़ कर मेरा कुछ नहीं, तब आपसे आप राग द्वेष शान्त हो जाता है। रागका मूल कारण पदार्थोंमें अनुकूलताकी श्रद्धा और द्वेषका कारण प्रतिकूलता की श्रद्धा है। जब तत्वज्ञानसे यह निश्चय हो जाता है कि सुख दु:ख हमारे कषायके परिणाम हैं तब अपनी कषायोंके शान्त करनेके उपाय अपनेहीमें देख कर निरीह वृत्ति हो जाता है। विशेष तत्त्व लिखनेका अभ्यास नहीं क्योंकि वास्तविक तत्वज्ञान होना कठिन है। फिर हम जैसे अपढ़ व्यक्तियोंको तो आभास ही कठिन है। फिर भी लगे रहो, एक दिन बेड़ा पार होगा। जहा तक बने शैली भग न करना। शेष सबसे यथायोग्य।

—o—

श्रीयुत लाला त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

आप जैसे सम्यग्ज्ञानी भद्र प्रकृतिके नर होकर भी संसार के दु:खसे भय करें, यह मेरे ज्ञानमें नहीं आता। जब हमने यह जान लिया, जो यह प्रकृति (रागादि परिणति) हममें होती है, वास्तविक हमारी नहीं किन्तु औदयिकी है। अतएव विलयदशाको प्राप्त हो जाती है। जब ऐसी वस्तु मर्यादा है, तब हमें उसके होनेका हर्ष और जानेका क्या विषाद? हर्ष तो तब होता है जब हमारी वास्तविक परिणति होती। विषाद तब होता जब हमारा कुछ अपकार करती। प्रत्युत: औदयिक भावके अभावमें आत्मगुणका विकास ही होना चाहिये।

किन्तु खेद है हम उस लघुपनेका हर्ष तो नहीं करते, विपरीत अभिप्रायके वशीभूत होकर दुःखी हो जाते हैं। यहा पर कोई कहे, रागादिकोंके सद्‌भावमें तो दुःख हुए बिना नहीं रहता। यह भी हमारी मिथ्याज्ञानकी भूल है। यदि किसीका हमने ऋण लिया है और वह वादे पर माग कर हमको अनृण बना दे तब क्या हमको साहूकारके इस व्यवहारसे दुःखी होना चाहिये ? कदापि नहीं, यदि हम दुःखी होते हैं तब मिथ्याज्ञानी हैं। इसी तरह औदयिक भाव जिस समय हों उस समय उसे कर्मकृत जान समता भावसे भोग लेना ही हमारी वीरताका परिचायक हैं। निमित्तकी अपेक्षा औदयिक रागादिक अनात्मीय हो है। इसका तो कथा ही क्या ? सम्यग्ज्ञानी क्षयोपशम भावोंको भी सद्‌भाव नही चाहता। क्योंकि वह भी कर्मके क्षयोपशमसे होता है। अब विचारने की बात है। जहा ज्ञानी आत्मगत भावों की उपेक्षा करके बल रूप होनेकी चेष्टामें तन्मय रहता है। भला वह ज्ञानी इन अनात्मीय दुःख-कर ससार जनक रागादिकोंकी अपेक्षा करेगा—बुद्धिमें नहीं आता। ज्ञानी जीव जब रागादिकोंको ही हेय समझता है, तब रागादिमें विषय हुए जो पदार्थ उन्हे चाहे, यह सर्वथा असम्भव है। जब यह वस्तुमर्यादा है तब परसे उपदेशकी वाञ्छा करना सर्वथा अनुचित है। परमें पर बुद्धि कर उसके द्वारा कल्याण होनेकी भावनाको छोडो। इस विश्वासके छोडे बिना श्रेयोमार्गका पथिक होना कठिन है। जैसे ससारके

उत्पन्न करनेमें हम समर्थ हैं वैसे ही मोक्षके उत्पन्न करनेमें भी स्वयं समर्थ हैं। जैसे —

नयत्यात्मानमात्मैव जन्मनिर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मन स्वस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थत ॥

आत्मा ही आत्माको ससार और निर्वाणमें ले जाता है। अत परमार्थसे आत्माका गुरु आत्मा ही है। परन्तु ऐसा कथन सुन कर कई भाई ऐसा अन्यथा कल्पना करते हैं, जो भक्ति मागके विरोधी उपदेश हैं। उनसे हमारी मध्यस्थता है। जबतक कायरताकी लहर है कल्याण दूर है। अपनी मण्डली से हमारी दर्शन विशुद्धि।

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

आपके पवित्र परिणामका फल है, जो आज इस शान्त रसको आस्वाद आने लगा। अन्तरग शान्तिके आस्वादमें मूर्च्छाकी न्यूनता ही कारण है, वह प्राय उन्ही भव्य जीवोंके होती ह जिनके स्व पर भेदज्ञान हो गया और निरन्तर पर्याय तथा पर्याय सम्बन्धी वस्तु जातमें उदासीन रूप होकर प्रवृत्ति करते हैं। वेही अल्पकालमें स्वात्म निधिके पात्र होते हैं। क्या लिखें ? लिखनेमें कोई स्वाद नहीं। मीसरीकी मधुरता क्या देखनेसे अनुभवगोचर हो सकती है ? नहीं, तब क्या आत्मगत शान्तिका स्वाद वचन द्वारा आ सकता है। यद्यपि वस्तु

स्वरूप की व्यवस्था इसी प्रकार है तथापि इस मोहके द्वारा अन्यथा ही यह जीव मान करता है। अस्तु अज्ञानी जन यदि वह बात करे तब कोई आश्चर्यकी बात नहीं किन्तु यदि शास्त्रके मर्मज्ञ होकर इस लीलाको अपनावे तब खेद की बात हैं। बाबाजीका स्मरण तो ऐसा हो रहा है जो आजन्म पीछा न छोडेगा। वे वहा रह गये यह अतिकल्याण सूचक है, यद्यपि यह अभी उन्हें कुछ बाधक प्रत्यय जान पडता होगा, परन्तु है साधक। मेरा सब मण्डलीसे यथायोग्य।

श्री महाशय त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि —

पत्र आया, समाचार जाने। जिसके वास्तविक तत्त्व दृष्टि होगई उसी जीवके ससारके उद्धारके अर्थ नाना कल्पनाए होती हैं परन्तु उनके होने पर भी वह भीतरसे दु खी नहीं होता। जैसे मेल गाडीसे जाने वाला मनुष्य दिल्लीमें बैठा और मथुरा जाकर गाडी २ घटे लेट होगई उसके २ घटे असह्य मालूम होते हैं, फिर भी निश्चय बम्बई पहुंचेंगे ऐसा दृढ़तम विश्वास उसके है। आपकी गोष्टी अच्छी है, इस पंचम कालमें इतना बहुत है। इससे अधिक की इच्छा रुपयेसे गिन्नीका माल चाहनेके तुल्य है। ज्ञानका विकास वही हित-कारी है जो सम्यक्भावसे अलंकृत हो। यदि आपको ज्ञानवृद्धिकी इच्छा है, बाराबसी रहो, सागर रहो, अथवा एक पण्डित

नहीं रखो। जो स्वाध्यायकी रुचि है वह बहुत कुछ साधन नहीं है। ऊपरि साधनोंके अभावमें आभ्यन्तरकी शुद्धिको धक्का पहुंचता है। उसे आप क्या सुभग समझेंगे? बाहर आकर जो रेलगाड़ी आदिमें अपव्यय करते हो उतनेहीमें एक मास अच्छा विश्राम मिल सकता है। परन्तु हमारी दृष्टि अभी और है। आप इतने स्वाध्याय करने पर रागद्वेष की निवृत्ति-के अथ क्यों आकुलता करते हो। केवल उदासीनताकी यथार्थता भग न हो, इस पर लक्ष्य रखिये। यही एक दिन वीतरागता रूपमें परिणत हो जायगी। उसे आप स्वयं देखेंगे। अन्यसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं। मेरा अपनी मण्डलीसे यथायोग्य कहना।

श्रीयुत महाशय बाबा भागीरथजी योग्य प्रणाम—

पत्र आया समाचार जाने। महाराज! हम तो फिर भी प्रार्थना करेंगे कि समाधिमरणके अथ ऐसा उत्तम स्थान खातौली है, रोहतक नहीं। कषायोंके उदय नाना प्रकार हैं परन्तु आप जैसे निस्पृह व्यक्तियोंके लिये नहीं, हम सदृश बहुतसे व्यक्ति उसके लिये हैं। आपतक उसका प्रभाव नहीं जा सकता। क्या ही सुन्दर पद्य श्रीमान् १००८ मानतुङ्ग मुनि महाराजने कहा है, यथा—

को विस्मयोऽत्र यदि नामगुणैरशेषै
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश॥

दौर्णैरुपात्त विविधाश्रय जात गर्वै ।
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षीतोऽसि ॥

और वास्तवमें श्री कुन्द २ मुनि महाराजने समयसारमें कहा भी है।—

उदयविवागो विविहो, कम्माण वण्णिओ जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा, जाणगभावो दु अहमिक्को ॥

आपकी प्रशम मूर्ति रहने पर भी यदि बलभद्र आदिने ज्ञाना मृतका पान न किया, तब फिर इस स्वातिकी बून्दका मिलना दुर्लभ ही नही, किन्तु असम्भव है, अस्तु आप क्या करें ? जब जैसा होना होता है होकर ही रहता है। मेरा विचार अब ७ दिनमें १ दिन बोलनेका है, और यह नियम अभी २ मासका लूंगा। यदि अशान्ति न हुई तो फिर ३ मासका लूंगा। मैं चाहता हू कि आपकी उपदेशामृत पूरित पत्रिका १ मासमें एक मिल जावे अच्छा है। इस अवस्थामें केवल स्वात्म विषयक चर्चाको त्यागकर विषयान्तरकी कथा उपयोगिनी, नहीं, धनिक वर्ग धनको निज सम्पत्ति समझ रहे हैं जो कि सर्वथा विपरीत है। विशेष ईसरी जाकर लिखूंगा।

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र नही, सो देना। जहातक बने शान्तिसे ही धर्म साधन करना। आकुलता न करना, आकुलता करना ही धार्मिक भावोंकी बाधक है। जो मनुष्य मोक्ष मार्गके सामने हो गया

वह तो सुखी ही है। अपनेको सम्यक्बोध होनेपर अवश्य एक दिन शान्तिका मार्ग अनायास मिल जावेगा। देखो सर्वार्थ सिद्धिके देवोंको सम्यक् ज्ञान तो है, परन्तु मोक्षमार्ग मनुष्य पर्यायसे होगा तब क्या उनकी आयु अशान्तिमें जाती है? नही, अत शान्तिसे जोवन बिताना।

श्रीयुक्त प्रशम मूर्ति महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। मैं आजकल हजारीबाग हू, और दो या तीन दिनमें ईसरी जाऊ गा। बाबाजीको जहातक बने वही रखनेकी चेष्टा करना। अब उनका शरीर प्राय बहुत ही शिथिल हो गया है। शिथिलतामे वैय्यावृत्तकी बडी आवश्यकता है। अन्तरङ्ग निर्मलताके अर्थ बाह्य कारणोंकी महती आवश्यकता है तथा योग्य भोजनादिक भी धर्मके साधन-में निमित्त होते हैं। अन्यत्र यह सुभीता नही। धार्मिकभाव का होना कठिन है। जिसके तत्त्वज्ञान होता है वहा धर्मकी रक्षा कर सकता है। मुझे विश्वास है कि बाबाजी हमारी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। शान्तिका अन्तरङ्ग कारण जहा प्रबल होता है वहा बाह्य कारण बाधक नहीं होते। जहा यह जीव स्वय ढीला होता है वहां निमित्तोपर दोषारोपण करता है। बाबाजी स्वयं विज्ञ हैं वे निमित्त कारणोंसे शान्तिकी रक्षा करे गे। फिर भी खातौलीमें उत्तम निमित्त है जो उनके

धम-साधनमें बाधक नहीं होंगे। मेरी निरन्तर भावना उनके सहवासकी रहती है परन्तु कारण कुछ नहीं। यह भी उन्हींके सहवासका फल है जो मैं एक स्थानमें रहगया। जिसकी भ्रांतिमें कोई लाभ नहीं दीखता। लाभका आश्रय स्वयं है। कषायकी उपशमताका प्रयास तो करता नहीं। कठिन २ कहकर इसको इतना गहन बना दिया है जो लोग भयभीत हो जाते हैं, आभ्यन्तर कषायको जिसने जान लिया है वह इसे चाहे तो दूर भी कर सकता है। पुरुषार्थके समक्ष कम कोई वस्तु नही क्योंकि हम सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय हैं। यदि इस उत्तमताको पाकर हमने कायरताका आश्रय लिया तब हमारी बुद्धिका क्या उपयोग हुआ ? केवल पर वञ्चनाके लिये ही यह जन्म गमाया। अत जहातक बने इन कषायोंसे न दबना, इन्हें दबाना। इनका दबाना यही है, ज्ञाता, दृष्टा रहना।

———

श्रीयुत महाशय पं० शीतलप्रसादजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

सर्व आपका लिखना योग्य है, किन्तु अन्तिम उपाय तो स्वयं करना पड़ेगा, केवल समागम क्या कर सकता है। हमारी अनादि कालसे दृष्टि निमित्तोंकी प्रबलतासे पराधी नताकी ओर ही अग्रसर रही है। मेरी तो यह सम्मति है कि स्वतन्त्रता पूर्वक आत्मद्रव्यकी दृष्टिमें जो पर पदार्थकी निमित्ततासे इष्टानिष्ट कल्पनामें अपना प्रभुत्व बना रखा

है उसे ध्वंस करो, यही मोक्षमार्ग है। अब मैंने फाल्गुण मास तक इस क्षेत्रमें रहनेका निर्णय कर लिया है। स्वाध्यायमें भी आपकी श्रद्धाको तोलकर हो प्रवृत्ति करना सुखदायी है, केवल ज्ञान सपादनके अर्थ स्वाध्याय न करो। केवल शुभोपयोग-के अर्थ व्रत आदि करनेको मुख्यता न आने दो। स्वाध्यायका फल भेद ज्ञान और व्रतादि क्रियाका फल निवृत्ति रूप हो, ऐसी कोशिशकी आवश्यकता है। केवल परकी रक्षा करनेसे दया नहीं होती, किन्तु मन्द कषायोंके उदयमे अशुभ परिणामों से अपनी रक्षा करना दया है। धनके त्यागसे दान नहीं होता क्योंकि यह पर पदार्थ है उससे जो हमारा ममत्वभाव गया इसीके माने त्याग है। दान तो मिथ्यादृष्टिके भी होता है, परन्तु जिस त्यागको मोक्षमार्गमें महत्व दिया है वह सम्यक्-ज्ञानीके ही होता है। मैं अल्पज्ञ हू, अत स्वतन्त्र लेख लिखनेमें असमर्थ हू। यदि अवकाश कमने दिया तब कभी कुछ लिखनेकी शक्ति होगी। कर्मकी प्रबलता सर्वको शक्तिशून्य बनाती हैं परन्तु यथार्थ श्रद्धाके सामने कर्मकी प्रबलता कुछ नहीं कर सकती। भाई साहब! आपकी मण्डलीसे मेरा धर्म प्रेम कहना, पर्यायकी नश्वरताका कोई नियत समय नहीं। अत कोई काम करो व्यग्र न हो। सर्व गुणका विकास स्वकीय पास है। व्यग्र होनेकी आवश्यकता नही। मेरा सर्वसे यथा योग्य।

श्रीयुक्ता देवी महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र मिला, समाचार जाने। स्वास्थ्य पूर्ववत् है। तथा अब विशेषकी आवश्यकता नही, आवश्यकता अब अन्तस्तत्त्वमें विचार करनेकी है। परकीय पदार्थोंसे परिणतिको पृथक्करण करना ही अन्तस्तत्त्वकी प्राप्ति है। अनादि कालसे अतथ्य विचारोंने ऐसा आत्माको जजरित कर दिया है, जिससे स्वोन्मुख होनेकी सुध भी नही होती। केवल वचन चातुरता छल है। जिस वचनके अनुकूल आंशिक भी स्वकार्य नही किया उसका कोई मूल्य नही। ज्ञान प्राप्ति का फल ससारके विषयोंसे उपेक्षा होना है। अर्थात् ज्ञाता, द्रष्टा ही रहना ज्ञानका फल है। यदि यह नही हुआ तब लोभीकी लक्ष्मी के सदृश वह ज्ञान है। केवल मनोरथसे इष्ट सिद्धि नही होती। मनोरथके अनुरूप सतत् प्रयास करना ही उसकी सिद्धिका मुख्य हेतु है। मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नही जो पुरुषाथसे सिद्ध न हो सके। पुरुषार्थसे सन्निकट है। केवल जो परमे परिणति हो रही है उससे विरुद्ध परिणति करना ही पुरुषार्थ है। केवल उपयोग को परसे हटाकर अपने रूपमे लगा देना ही अपना कर्त्तव्य है। विशेष फिर।

श्री त्रिलोकचन्द्रजी दर्शन विशुद्धि ।

आकुलता न करना, चाहे सुख हो वा दुःख । आकुलतासे स्वात्मज्ञानमें ही बाधा पहुंचती है सो नहीं, सांसारिक कार्य-मे भी विघ्न आता है । शान्तिसे स्वाध्याय करो । आकुलता मोक्षकी भी न करनी चाहिये । हमारा विचार शिखरजी जाने का है, यदि गया तो पत्र दूंगा । अष्टान्हिका वहींकी करनेका विचार कर रहा हूं । शेष सबसे मेरी यथा योग्य ।

देवी दर्शन विशुद्धि ।

महात्माका लक्षण तो श्री बाबाजीमें है । ज्ञानसे आत्मा पूज्य नहीं, पूज्यताका कारण तो उपेक्षा है । श्रीयुत बाबाजीके प्राय रागकी बहुत मंदता है तथा साथमें निर्भयता, निर्लोलुपता जितेन्द्रियता आदि गुणोंके भण्डार हैं । यह कोई प्रशंसा की बात नहीं, आत्माका यह स्वभाव ही है। हम तो पामर जीव हैं । बाबाजीके समागम से कुछ सम्मुख हुए हैं । निरन्तर उनके संसर्गकी इच्छा रहती है, परन्तु पुण्योदय बिना संसर्ग होना कठिन है । हां, अब निरन्तर स्वाध्यायमें काल यापन करता हूं । इस कालमें ज्ञानार्जन ही आत्मगुणका पोषक है । यदि ज्ञानके सद्भावमें मोहका उपशमन नहीं हुआ तब उस ज्ञानकी कोई प्रतिष्ठा नहीं । जीवन बिना शरीरके तुल्य है, हम तो उसीको उत्तम समझते हैं । जो संसारदुःखसे भीरु है यदि बहुत

कायक्लेश कर शरीरको कृश किया और मोहादिको कृश न किया, सब व्यर्थ ही प्रयास किया। अतएव अपने समयको ज्ञानार्जनमें लगा कर मोह कृश करनेका ध्येय रखना ही मानव-का कर्तव्य है। श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजीसे दर्शन विशुद्धि।—जो आपकी प्रवृत्ति है वही संसारसे पार करेगी। भूल कर भी गृहसे उदास होनेकी भावना को न भूलिये, छोडना इस कालमें सुख कर नहीं। क्योंकि पंचम कालमें बाह्य निमित्त उत्तम नहीं। स्वाध्याय ही सर्व कल्याणमें सहायक होगा। स्वास्थ्य अच्छा होने पर एक बार अवश्य आऊंगा। मेरी भावना सत्समागममें निरन्तर रहती है। शेष सर्वसे यथा योग्य।

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि।—

संसारमें जहां तक गम्भीर दृष्टिसे देखा गया शान्ति का अंश भी नहीं। मैं, तू, कह कर जन्मका अन्त हो जाता है परन्तु जिस शान्तिके अर्थ व्रत, अध्ययन, उपवासका परिश्रम उठाया जाता है उस मूल वस्तु पर लक्ष्य नहीं जाता। कह देना कोई कठिन वस्तु नहीं। द्रव्य श्रुत मात्र कार्यकारी नहीं, क्योंकि यह तो पराश्रित है। वही चेष्टा हमारे प्राणियोंकी रहती है। भाव श्रुतकी ओर लक्ष्य नहीं। अत जल मन्थनसे घृतकी इच्छा रखनेवाले सदृश हमारा प्रयास विफल होता है। अत कल्याण पथ पर चलनेवाले प्राणियोंको शुद्ध वासना बनाना ही हित-कर है।

श्री महादेवी दर्शन विशुद्धि।—

पत्र आया, समाचार जाने। तीर्थ यात्रा की, यह अच्छा किया। क्योंकि तीर्थ क्षेत्रोंमें परिणाम अत्यन्त विशुद्ध होता है। मेरा स्वास्थ्य प्रतिदिन अवनत होता जा रहा है किन्तु नित्यकर्ममें कोई बाधा नही। औषधि अर्हन्नाम और स्वाध्याय है। यदि इस पर्यायको कोई सफल करना चाहता है, तब निरन्तर स्वाध्याय और शुभ विचारोंमे उपयोगमें लगावे। नाना प्रकारकी कल्पनाओंके जालमें न फसे। दादीजीको दर्शन विशुद्धि। बाईजीका धर्म स्नेह। रुपियाको बाबत जो लिखा सो ठीक है। आप और बाबाजोको जो इच्छा हो सो करना। मैं आपका इच्छामें बाधक नहीं। यहापर भी अच्छा व्यवस्था हैं।

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी दर्शन विशुद्धि।—

पत्र आया, समाचार जाने। मैं इतना परिश्रम नहीं कर सकता जा आपकी सभाको लाभ पहुचा सकू। अत आनेसे लाचार हू तथा वहाका जलवायु मेरे अनुकूल नही। मैं बाबा जा महाराजके सदृश जीवन व्यतीत करना चाहता हू। आषाढ बदी २ को श्रीपार्श्व प्रभुके निर्वाण भूमिके दर्शनको जाना चाहता था और वही चतुर्मासका विचार था किन्तु एकदम पाद अगुष्टमें वेदना हो गई जो नही जा सका। पुण्यहीनोको ऐसा अवसर कठिन है। अब आराम है। केवल शामको ज्वरांश हो जाता हैं। मेरी सर्व साधर्मियोसे योग्य दर्शन विशुद्धि।

श्रीमती सहृदया देवी महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने, बाईजीका स्वास्थ्य अभी पूर्ववत् है। सप्तम गुणस्थानसे जो जीव श्रेणी मांडते हैं वे दो तरहसे माडते हैं, उपशम तथा क्षय रूपसे। जो चारित्रकी प्रकृतिया उपशम करते हैं उनके औपशमिक भाव और जो क्षय करते हैं उनके क्षायिक भाव होता है। अर्थात् चतुर्थ गुण-स्थानसे सप्तम गुणस्थान तक जो भाव होते हैं, उन्हें क्षायों पशमिक भाव कहते हैं। क्योकि इन गुणस्थानोंमें चारित्र मोहकी क्षयोपशम होता है। ऊपर गुणस्थानोमें उपशम और क्षयका मुख्यता है। यद्यपि दशम गुणस्थानमे लोभका उदय है इससे इन भावोको क्षयोपशम जन्य क्षायोपशमिक ही कहना चाहिये। औपशमिक भाव तो एकादश गुणस्थानमें होता है। क्षायक भाव द्वादश गुणस्थानमें होता है किन्तु करणानु-योगवालोंने उसकी विवक्षा नहीं की। तत्त्वार्थसारवालोंने उसकी विवक्षा की। अत दोनों ही कथन मान्य हैं। जैसे पचाध्यायीकारने चतुर्थ गुणस्थानवालोंमें ज्ञान चेतनाही-का विधान किया है, पचास्तिकायवालोंने तेरहवे गुण स्थानमें ज्ञान चेतना स्वाकार की है परन्तु विरोध नहीं, क्योंकि सम्यग् दृष्टि जीवके स्वामित्वपना नही, यह तो पचा ध्यायीवालोंका मत है। स्वामो कुन्दकुन्द महाराजने क्षायो-पशमिक भावमें कर्म निमित्त हेनेसे स्वीकार नहीं किया। वास्तवमें दोनोंहा कथन विवक्षाधीन होनेसे सत्य हैं।

स्वाध्याय ही इस क्षेत्र व कालमें अनुपम सुखका हेतु है। अतः ज्ञानकी वृद्धिका निरन्तर प्रयत्न करना। शरीरकी रक्षा ज्ञानके व संयमके अर्थ है। यदि इनमें बाधा आगई तब होगा ही क्या, ऐसा विचार, इनके अनुकूल साधन रखना। हमने १२ मास एक स्थानमें रहनेकी प्रतिज्ञा की है और वह स्थान पार्श्व प्रभुके निर्वाणक्षेत्रके अत्यन्त निकट पार्श्वनाथ स्टेशन जिसको इसरी कहते हैं। जहाका जल-वायु अति उत्तम है। बाईजीका स्वास्थ्य उत्तम होते ही प्रस्थान करूगा। पर्यायका विश्वास नहीं। कुछ दिन तो शान्तिसे जावे। यद्यपि यह प्रान्त जहा पर श्रीबाबाजीका निवास है, उत्तम है। परन्तु जन ससर्ग बाधक है। अपरीचित स्थानमें बाह्य कारणोंकी न्यूनता रहती है। यद्यपि अध्यवसान मात्र-बन्धक है तथापि उनमें निमित्त जो बाह्य वस्तु हैं वे भी अल्प शक्तिशालोंको त्याज्य हैं, अल्प शक्तिसे तात्पर्य चारित्र मोहका जिनके सद्भाव है। तीर्थंकर महाराज भी बाह्य पदार्थोंको हेय जानकर तथा रागादिकके उत्पादक जानकर त्याग देते हैं। इसमें अणु मात्र भी सशय नहीं। कर्मोदयमें भो तो बाह्य वस्तु निमित्त पडती है। अभी समय नहीं था इसलिये विशेष नहीं लिख सका। शेष सर्व मण्डलीसे यथा योग्य।

—o—

श्रीमान् त्रिलोकचन्द्रजी साहिब दर्शन विशुद्धि—

बन्धुता वह है जो ससारसे तारे। सच्चे बन्धु तो अर्हंत

ही हैं। विशेष विकल्प न करना। यह अच्छा वह अच्छा इससे कुछ न होगा। हम अच्छे हैं यदि हम रागादिकको छोड देवे। उन्हे छुड़ानेवाला कोई नही। हमने उपार्जन किये हम ही छोड देगे, इसमें सदेह नही। सो पूर्ण बल इसीमें लगाना। मेरा सवसे यथायोग्य। विशेष पत्र अवसर पाकर लिखू गा।

श्रीयुक्ता धर्मानुरागिणी पुत्री महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। जगतमें अनन्तानन्त जीव राशि हैं। उसमें मनुष्य-सरया बहुत अल्प है। किन्तु यह अल्प होकर भी सर्व पर्यायोंमें मुरय है। इसी पर्यायसे जीव निज शक्तिके विकासका लाभ लेकर, अनादि ससारके बन्धनजन्य मार्मिक भेदी दु खोका समूल नाश कर, अनन्त सुखोंके आधार परमपदकी प्राप्ति करता है। सयम गुणकी पूर्णता इसी पर्यायमे होती है जो कि उक्त परमपदका हेतु है। अत एव जहा तक बने उसी गुणका रक्षाके अविरुद्ध कार्योंको करते अपनी जीवन यात्राका निर्वाह करते हुए निराकुलता पूर्वक इस पर्याय-को प्रतिक्षण यापन करना चाहिये। इसीके रक्षण हेतु स्वाध्याय, यजन पूजन, दानादि क्रियाय है। उक्त गुणके रक्षण विना, एक अक विना शून्य मालाकी कुछ गौरवता नही, इसके सहित जीवनका व्यय कुछ व्यय नही। इसके अभावमें कोटि पूर्वकी आयुकी प्राप्ति दृष्टिके बिना वदनकी शोभाके सदृश है। अतएव हे पुत्री! सतत् ज्ञानाभ्यासमे काल यापन करो। इसीमे आपका कल्याण है। शेष यथायोग्य।

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। हम श्रीजिनवरके दर्शनके सन्मुख होगये हैं। आज २ दिन हैं, जिस दिन दर्शन होंगे उस दिनको धन्य समझेंगे। आत्मज्ञान शून्य सब प्रकारके व्यापार ऐसे निष्फल हैं जिस प्रकार नेत्रहीन सुन्दर मुख। यदि हम मानव गण वास्तव तत्त्व पर दृष्टिपात करें तब अनायास ही कल्याण-पथ मिल सकता है। यहा तो यह मिसाल है। घडी डूबती है घण्टा पीटा जाता है। ऐसे ही अपराधी आत्मा है कायको दण्ड दिया जाता है। शान्ति स्वकीय आभ्यन्तरमें है। तीर्थोंमें डोलने फिरनेसे नहीं। पर पदार्थोंको निज तत्त्व मानकर यह सब जगत आपत्ति-जालमें वेष्टित हो रहा है। अत अब जहांतक बने इस बाह्य दृष्टिको त्यागना ही श्रेयोमार्गकी ओर जाना है। जो कार्य किया जावे उसमें हर्ष विषादकी मात्रा न हो। यही मात्रा ससारकी श्रेणी है। अत इस विषयमें सर्वदा सतर्क रहना ही हमारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। दादीजीसे हमारी दर्शन विशुद्धि कहना। अब तो सच्ची दृष्टिसे ही काम लो और सब जाल है।

——

श्री महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

मैं बरुआ सागरसे खजरहाकी वन्दना कर पन्ना आ गया। खजरहामें अपूर्व जिन मन्दिर और प्रतिमायें हैं। परन्तु

भग्न बहुत हैं। इतनी सुन्दर मूर्तियें हैं जो देख कर वीतरागता-
की स्मृति होती है। शान्तिनाथ स्वामीकी मूर्ति अपूर्व है।
अस्तु विशेष क्या लिखें। रागादिकोंके सद्भावमें यह सब
दृष्टिपथ हो रहा है। सत्य ही है। जो कुछ संसारमें दृश्य
पदार्थ हैं वे सब नश्वर हैं। किन्तु कल्याण पथवालेको यह
सत्यता प्रतीति होती है। यदि हमको स्वात्म कल्याण करना
है तब इन सब उपद्रवोंको पृथक् कर केवल जिस उपायसे बने
बुद्धि पूर्वक इन रागादिकोंको निर्मूल करनेकी चेष्टा करना।
स्वकीय कर्तव्य पथमें आना चाहिये। केवल बाह्य त्यागकी
कोई प्रतिष्ठा नहीं। ज्ञानकी भी महिमा रागादिकोंके अभावमें
है। यों तो सभी ज्ञानी और त्यागी हैं। किन्तु सत्यमार्गके
अनुयायी, हार्दिक स्नेही बहुत ही अल्प हैं। यही भी एक कषाय
की प्रबलता है। क्या करें? कौन नहीं चाहता कि हम ज्ञानी
हों परन्तु महिमा उस मोहकी अपरम्पार है। अस्तु इन बातोंमें
क्या सार है? सब यत्न इसी रागादि मलके पृथक् करनेमें
लगाना चाहिये। विशेष विकल्पोंमें कभी भी आत्माको उल
झाना न चाहिये। यावत् प्रयास हो सके शान्तिपूर्वक समय
बीताना ही हित मार्गका प्रथम सोपान है। जिस कार्यके
सम्पादन करनेमें आभ्यन्तर क्लेश न हो वही रामबाण औषधि
संसार रोगकी है।

——

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

हम पत्र दे चुके हैं। यह पत्र इस अथ देता हूं। अब वैशाख बदि ६ को पत्र दूंगा। इस मनुष्य पर्यायकी प्राप्ति दुलभ जान समयका दुरुपयोग न करना, क्योंकि समयके सदुपयोगसे ही समयकी प्राप्ति होती है। आजतक इस जीवने स्व समयकी प्राप्तिके लिये पर समयका आलम्बन लेकर ही प्रयत्न किया। प्रयत्न वह सफलीभूत होता है जो यथार्थ हो। आत्मतत्त्वकी यथार्थता इसीमें है कि जो उसमें नैमित्तिक भाव होते है उन्हे सर्वथा निज न मान ले। जसे मोहज भाव रागादिक हैं वे आत्माहीके अस्तित्वमें होते हैं परन्तु विकार्य हैं अत त्याज्य हैं जैसे जल अग्निका निमित्त प्राप्तकर उष्ण होता है। और वतमानमें उष्ण ही है। अत उष्णता त्याज्य ही है। क्योंकि उसके स्वरुपकी वि ातिक है, तथा रागादिक परिणाम आत्माके चारित्र गुणका ही विकार परिणमन हैं परन्तु आत्माका जो द्रष्टा ज्ञाता स्वरुप है, उसके घातक हैं, अत त्याज्य हैं। जिस समय रागादिक होते हैं उस कालमें ज्ञान केवल जानन क्रिया नहीं करता साथमें इष्टानिष्टकी भी कल्पना जानन क्रियामें अनुभव करने लगता है। यद्यपि जानन क्रियामें इष्टानिष्ट कल्पना तद्रूपा नहीं होजाती हैं, फिर भी अज्ञानसे वैसा भासने लगता है। जैसे रस्सीमें सर्पका बोध होनेसे रस्सी सर्प नही हो जाती, ज्ञानहीमें सर्प भासता है। परन्तु उस कालमें भयका होना अनिवार्य हो

जाता है। जाग्रतकी कथा तो दूर रहो, स्वाप्निक दशामें भी कल्पित पदार्थोंको हम मानकर रागद्वेषके दंशसे नहीं बच सकते हैं। कुछ नहीं। इसी तरह इस मिथ्या भावके सहकारसे जो हमारी दशा होती है वह कैसी भयानक दुःख करनेवाली है? इसका अनुभव हमें प्रतिक्षण होता हैं। फिर भी तो चेतते नहीं। विशेष फिर।

———

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

जहातक बने बाबाजीको अन्यत्र जानेसे निषेध करना। वहा उनका धर्मध्यान उत्तम होता है तथा साधन भी उत्तम है। जो स्वाध्याय करो, मनन पूर्वक करना। यह एक ऐसा तप है जो स्वात्मोपलब्धिमें विशेष साधक है। इसके द्वारा ही, धर्म ध्यान शुक्लध्यान होते हैं यह अपूर्व कारण है। दादीजीसे धर्मप्रेम कहना। मैं एकबार बैशाखमें बाबाजीका दर्शन करूंगा।

———

श्रीयुक्ता महाशया देवी महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। ससारमें जो ज्ञानकी महत्ता है वह मोहके अभावमें है। अत एव उस ज्ञानसे भी जो वास्तविक पदार्थको प्रतिपादित करता है। उसको श्रवण कर जो श्रोता मोहके अभाव करनेकी चेष्टा करता है वह मोक्षमार्गका पात्र हो सकता है। और वक्ताको आंशिक भी उस मार्गका लाभ

नहीं हो सकता, यदि मोहके पृथक् करनेका प्रयत्न न करे। ज्ञान समान अन्य इस आत्माका हित नहीं यदि वह मोहके बिना हो। मोही जीवका ज्ञान बधहीका कारण है। सर्पको दुग्ध पान करानेसे निर्विषता न होगी। मैं आठ दिन बाद गिरिराज पहुच जाऊ गा। पत्र वहीं देना।

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

आपके पत्रसे कुछ अशातिकासा आभास हुआ। बेटी! ससारमें कभी भी शान्ति नहीं। केवल हमारी दृष्टि बाह्य पदार्थोंमें स्वकीय रागद्वारा निजत्वकल्पनासे सुख चाहनेकी है। सुख तो स्वकीय शान्ति परिणतिके उदयमें है। हम इन बाह्य वस्तुओंके ग्रहणा‍ि व्यापारमें सुख खोज रहे हैं। जो सर्वथा असम्भव है। हमारी अनादि कालसे परिणति मिथ्या दर्शनके सहवाससे कलुषित हो रही है। जो हमे क्षणमात्र भी आत्म सुखका स्पर्श तक नही होने देती। वही महापुरुष और पुण्य शाली जीव है जिसने अनक प्रकारके विरुद्ध कारणोंके समागम होनेपर अपने शुचि चिद्रूपको अशुचितासे रक्षित रखा। आपका ज्ञान विशुद्ध है। अत सब प्रकारके विकल्प त्याग कर स्वकीय श्रेयोमागको प्राप्तिके उपायमें ही लगा देना। नेत्रोंकी कमजोरी का मूल कारण शारीरिक शक्तिको न्यूनता है। अत धम साधनका नौ कर्म शरीरको जान सर्वथा उपेक्षा करना अनुचित है। व्रतादिक करनेका अभिप्राय कषाय कृश करना है। ऐसी

कृशता किस कार्यकी, जो स्वाध्यायादि कार्योंमें बाधक हो? उत्सर्ग और अपवादमें मैत्री भाव रखनेमें विज्ञानी जीवोंकी मूल चेष्टा रहती है। विशेष क्या लिखें? हम तो तुम्हें बाईजीके तुल्य समझते हैं। अपनी मा और भावीजीसे मेरी दर्शन विशुद्धि कहना।

——

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

आपका ध्यान निराकुलता पूर्वक होता है। इस प्राणीको मोहोदयमें शान्ति नहीं आती, और यह उपाय भी मोहके दूर होनेके नहीं करता। केवल बाह्य कारणोंमें निरन्तर शुभोपयोग के सग्रह करनेमें अपने समयका उपयोग कर अपनेको मोक्ष मार्गी मान लेता है। जो पदार्थ हैं, चाहे शुद्ध हों, चाहे अशुद्ध हों, उनसे हित और अहितकी कल्पना करना सुसगत नहीं। कुम्भकार मृत्तिका द्वारा कलश पर्यायकी उत्पत्तिमें निमित्त होता है। एतावता कलश रूप नहीं हो जाता। यहा पर कुम्भकारका जो दृष्टान्त है सो उसमें तो मोह और योग द्वारा आत्माकी परिणति होता है। अत वह निमित्त कर्ता भी बन सकता है। परन्तु भवगान् अर्हन्त और सिद्ध तो इस प्रकारके भी निमित्त कर्त्ता नही। वह तो आकाशादिकी तरह उदासीन हेतु हैं। उचित तो यह है जितना पुरुषार्थ बने रागादिकके पृथक् करनेमें किया जाये। शुभोपयोग सम्यग्ज्ञानीको इष्ट नहीं। जब शुभोपयोग इष्ट नही तब अशुभोपयोगकी कथा तो दूर रहीं।

श्रीयुक्ता देवीजी दर्शन विशुद्धि—

पत्र देरसे मिला। इससे समय लिखनेको नहीं मिला। क्योंकि मैं पूर्णिमाको ही विशेष उहापोह करके लिखता हू। मेरी दृष्टिमें तो यही आता है जो पराधीनताका त्याग ही स्वाधीन सुखका मूल मन्त्र है। पुस्तकसे जो ज्ञान होता है, वह यदि अनुभवमें न आवें तब कार्यकारी नही। सर्व प्रमाणोंके ऊपर इसकी बलवत्ता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी यही आज्ञा है जो कुछ भी जानो उसे अनुभवसे प्रमाण करो। यावत् अनुभवमें न आवे तावत् वह पूर्ण नही। सर्वसे दर्शन विशुद्धि।

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि-

विशेष बात यह है जो शान्तिका उपाय प्राय प्रत्येक प्राणी चाहता है, परन्तु मोह वशीभूत होकर विरुद्ध उपाय करता है। अत शान्तिकी शीतल छायाके विरुद्ध रागादिक तापकी उष्णता ही इसे निरन्तर आकुलित बनाए रखती है। इससे बचनेका यही मूल उपाय है जो तात्त्विक शान्तिका कारण अन्यत्र न खोजे। जितने भी पर पदार्थ हैं चाहे वह शुद्ध हो चाहे वह अशुद्ध हों जबतक हमारे उपयोगमें उनसे सुख प्राप्तिकी आशा है, हमको कभी भी सुख नहीं हो सकता। मेरा तो दृढ विश्वास है जैसे बाह्य सुखमें रूपादिक विषय नियम रूप कारण नही वैसे आभ्यन्तर सुखमें शुद्ध पदार्थ भी नियम रूप हेतु नहीं। जब ऐसी वस्तुकी स्थिति है, तब

हमें अपने ही अन्तःस्थलमें अपनी शान्तिको देखकर परपदार्थमें निजत्वका त्याग कर श्रेयोमार्ग की प्राप्तिका पात्र होना चाहिये।

श्रीयुक्ता कल्याण मार्गरत महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, बाईजीके अन्त करणसे आपके प्रति निरन्तर धर्मानुराग रहता है। बडी चाहसे आपका पत्र सुनती हैं। उनका स्वास्थ्य १२ माससे ठीक नही। १५ दिन बाद ज्वर आजाता है। परन्तु धममें प्रति दिन दृढतम परिणाम होते जाते हैं। निरन्तर समाधिमरणका पाठ चिन्तवन करती रहती हैं। आपके प्रति उनका कहना है कि बेटी (शक्तितस्त्याग तपसी) इस वाक्यका निरतर उपयोग रखना। ऐसा तप व सयम न करना, जिससे सवथा निर्बल शरीर हो जावे, और न ऐसा पोषण ही करना जो स्वाध्याय क्रियामें बाधा पहु च जावे। यथाशक्ति क्रिया करना श्रेयस्कर है। तत्त्व श्रद्धानके दृढतम करनेके अर्थ आध्यात्मिक दृष्टि पर निरन्तर अधिकार रखना और अपने कालको निरन्तर जैन धमके विचारमें लगाना। जो लडकी पढने आये उन्हें साथ पाठ पढाना। यदि ऐसी प्रवृत्ति हमारी बन जावेगी तब अनायास हमारा कल्याण निकट है। मेरा भी यही आपके प्रति भाव है कि आपकी आत्मा धर्ममार्गमें तत्पर रहैं।

श्रीयुक्ता महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि-

पूज्यताका कारण वास्तविक गुण परिणति है। जिसमें वह है पूज्यता व सुखका आवास है। हमारा निरन्तर यही परिणाम रहता है कि बाबाजीके समागममे काल यापन करें, किन्तु कुछ ऐसा कर्म विपाक है जो मनोनीत नहीं होने देता। अस्तु मेरी सम्मतिके अनुकूल बाबाजीको जितना उत्तम स्थान खातौली है, अन्य नहीं। इतर स्थानोंमे स्वाध्याय प्रेमी नहीं। प्राय गल्प प्रिय हैं। यदि उनको पत्र डालो तब मेरा अभिप्राय अवश्य लिख देना और जितना बने सुबोध पूर्वक स्वाध्याय करना। स्वाध्याय तप है और संवर निर्जराका कारण है। आत्मज्ञानके सम्मुख करने वाला है। एकबार प्रबल आकाक्षा बाबाजीसे मिलनेकी हैं। ठण्ड जानेके बाद यदि शरीर योग्य रहा तब १५ दिनको आऊंगा।

श्रीयुक्ता शान्तिमूर्ति महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

कल्याण पथ तो आत्मामें है, किन्तु हमारी दृष्टि उस ओर न जाकर पराश्रित होकर बाह्य पदार्थोंके गुणदोष विवेचन ही में अपनी सर्व शक्तिका अपव्यय कर चरितार्थ हो जाती है। जहातक बने स्वाध्यायका उपयोग यथाथ वस्तुके परिज्ञानमें ही पर्यवसान न हो जाना चाहिये किन्तु जिनके द्वारा हम अनन्त ससारके बन्धनमे बद्ध है, ऐसे मोह रागद्वेषका अभाव करके ही उसे विराम लेना चाहिये। प्रशसासे कुछ स्वात्मोत्कर्ष नहीं।

स्वात्मोत्कर्षका मुख्य कारण रागद्वेषकी उपक्षीणता ही है। मुझे एकबार बाबाजीके दर्शनकी बड़ी इच्छा है। समय पाकर होगा। मेरा स्वास्थ्य भी अब रैलकी यातायात योग्य नहीं। केवल एक स्थान पर शान्ति पूर्वक स्वाध्याय करनेके योग्य है। आजकल प्राणियोंकी स्थिर प्रकृति नहीं इसीसे विशेष आपत्ति नहीं सह सकते। फिर भी जिसके आभ्यन्तर उत्तम श्रद्धान है वह इन विपत्तियोंके द्वारा भी विचलित नहीं होता। शेष सर्वसे धर्म-प्रेम।

——

श्रीयुक्ता देवी महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र मिला समाचार जाने। भाद्र मास सानन्दसे धर्म-ध्यानमें बीता। किन्तु आभ्यन्तर शुद्धिका होना कठिन है। जिन जीवोंने आत्मशुद्धि न की उनका व्रत, तप, सयम, सकल निष्फल है। बाह्य क्रिया तो पुद्गल कृत विकार है। अत बाह्य आचरणों पर उतना ही प्रेम रखना चाहिये जो आत्म शुद्धिके साधन हो। क्योंकि मतिज्ञानके साधक द्रव्येन्द्रिया-दिक हैं। अत इनकी रक्षा करनी इष्ट हैं। जहातक बने आभ्यन्तर परिणामोंकी निर्मलता रखना ही अपना ध्येय समझना। आत्माका निज स्वरूप श्री चेतना रूप है। उसकी व्यक्ति ज्ञान-दर्शन रूपमें प्रगट अनुभवमें आती है। परन्तु अनादि परद्रव्य सयोगसे नाना परिणमन द्वारा विकृतावस्था उसकी हो रही है। परन्तु इससे ऐसा न समझना कि

स्वरूप प्रगट होना असम्भव है। असम्भव तो तब होता जब उसका लोप होजाता, सो तो नहीं है। असली स्वभावका प्रगट होना कठिन है। विस्मृत हस्तगत रत्नके समान हैं। जिस तरह कोई अपनी वस्तु भूल जाता है और यत्र तत्र खोजता है। बस इस न्यायसे यह जीवात्मा अपने असली निज रूपको भूल कर पर-पदार्थोंमें हेरता है। अपनेको आप नहीं जानता। मोह निमित्त प्रबल हो रहा है। उसमें फसकर सुखके कारणोंको दु ख प्रतीत करता है, दु खके कारणोंमें सुख मान रहा है। इस विपरीत भावसे निज निधि भूल रहा है।

श्रीयुत महानुभाव बाबा भागीरथजी वर्णी—

योग्य इच्छाकार। मैं आपको उत्कृष्ट और महान् समझता हू। अत आपके द्वारा मुझे खेद पहुचा, यह मैं स्वीकार नहीं करता, आपकी महती अनुकम्पा होगी जो आप कातिक बाद दर्शन देवेंगे। मैं अगहनमे श्री गिरिराजकी वन्दनाको पैदल जाऊ गा ऐसा दृढ निश्चय है।

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

आपलोक धार्मिक हैं। मेरी सबसे दर्शन विशुद्धि। शान्ति का माग आकुलताके अभावमें हैं। वह निजम है, निजी है, निजाधीन है। हम ऐसे पराधीन होगये हैं जो उसको लौकिक पदार्थोंम देखते हैं तथा निरन्तर उनकी उपासनामें आयु पूर्ण कर

देते है, उचित तो यह था कि स्वात्म सम्बन्धी जो कलुषित भाव थे उन्हे दूर कर शान्त होते, परन्तु सो तो दूर रहा। (आखमे रोग कानमें दवा) अस्तु विशेष फिर, अब तो यही भावना रहती है कि कुछ पारमार्थिक शान्तिकी ओर लगू। एक समयसार हीका स्वाध्याय करता हूं। चाहे कुछ आवे चाहे न आवे, वही शरण है। अब किस किसकी शरण लू। अगर पार होना है तो वही कर देगा।

श्रीयुक्ता महादेवी योग्य दर्शन विशुद्ध-

पत्र आया, समाचार जाने। इस ससार महाटवीमे मोह कर्म द्वारा सम्पादित चतुर्गति भ्रमण द्वारा यह जीव कभी भी स्वास्थ्य लाभका भागी न हुआ। सुखका मूल कारण केवल मोहकर्मका नाश है, वह सामान्यतः मोह, राग, द्वेष तीन रूपमे विभाजित है, जिसमें प्रथम भेदके आधीन इतर दोकी सत्ता है। जिसको कुछ भी ज्ञान है वह शीघ्रही इसको कह देता है, परन्तु आभ्यन्तरसे उसकी विकृतिको न होने दे यही परम दुर्लभ है। अतएव जहातक बन स्वाध्यायमे ही अपनी प्रवृत्ति रखना, यथाशक्ति तप और त्याग करना, तथा समय पाकर अपनी पुत्री बहन, माताओको धर्मध्यानमे लगाना। यही सर्व उपाय मोहके दूर करनेके हैं।

जगत्‌की विचित्रता ही हमको जगतसे उपरत करानेकी जननी है। हम जन्मान्तरोंके प्रबल विरुद्ध अभिप्रायोंसे

नाना प्रकारके कर्मबन्धनसे जकड़े हुए हैं। हमें निज हित नहीं सूझता। जिसने इस पराधीनताका कारण मोह-बन्धन डाला कर दिया, उसने सब कुछ किया। इससे संसारमें यदि न रुलना हो तो इसे छोड़ दो। यही मोक्षमार्ग है। अब बाईजी अच्छी हैं। पुत्री। तुम भी वैद्यकी अनुकूल दवा सेवनकर नीरोगताका लाभ करना। क्योंकि शरीर निरोगता ही धर्म साधनमें मुख्य हेतु है। बाबाजी महाराजका हमारे पास भी १५ दिनसे पत्र नहीं आया है, शायद भाद्रपद मासमें पत्र देना छोड़ दिया हो।

— —

श्रीयुक्ता महाशया देवी महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। हमलोगोंका कर्त्तव्यही है कि उनकी वैयावृत्त करे। उनको दमाकी बीमारी होगई है। यदि योग्य औषधि मिल जावे तब उनका स्वास्थ्य कुछ दिनके लिये सुधर जावे। इतना बीमारी होतेहूी उनका धैर्य प्रशसनीय है। हा शब्दका उच्चारण नहीं। धर्ममें पूर्ण दृढ़ता है, एक मासको सिवाय वस्त्रके परिग्रहका त्याग कर दिया हैं किन्तु मुझे विश्वास है, उसके रोगका प्रतिकार नहीं। फिर जो होगा समाचार दूंगा। रोगादि दुःखजनक नहीं, रागादिक दुःख दायी हैं। बाबाजी महाराजको यह चाहिये कि खतौली छोड़कर अन्यत्र न जावें। मैंने यह विचार कर लिया हैं कि अबाकी कार्ड या टिकट आवे तभी उत्तर देना, यह नियम बाबाजीके वास्ते नहीं। स्वाध्याय दृढ़ाध्यवसायसे करना।

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

श्री जिनेन्द्रके आगमका अहर्निश अभ्यास करना। यही ससार महार्णवसे पार करनेको नौका सदृश हैं। कषाय अटवी दग्ध करनेको दावानल है। स्वानुभव समुद्रकी वृद्धिके अर्थ पौर्णमासीका चन्द्र है भव्य कमल विकासनेको भानु है, पाप उलूक छिपानेको भी वही है। जहातक बने यथायोग्य शरीर-की रक्षा करते हुए धमकी रक्षा करना। बाईजीका धर्मस्नेह। बाबाजी महाराजका पता देना, वे जहा पर चातुर्मास्य करेंगे, वहीं मैं रहू गा।

श्री देवीको दर्शन विशुद्धि—

बाह्य निमित्त कोई भी ऐसे प्रबल नहीं जा बलात्कार परिणामको अन्यथा कर देव। अभी अन्तरगमें कषायकी उपशमता नहीं हुई। इसीसे यह सर्व विपदा है। आकुलता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। अपना स्वरूप ज्ञाता दृष्टा है। यही निरन्तर भावना और तद्रूप रहनेकी चेष्टा रखना। यदि कर्मोदय प्रबल आया तब शान्ति भावसे सहना, यही कर्मको नाश करनेका प्रबल शस्त्र है।

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

श्रीयुत महाराजसे प्रणाम कहना, जगतका मूल स्नेह है। परन्तु धार्मिक पुरुषोंका स्नेह जगतके उच्छेदका कारण है। यदि

राग बुरा है तो रागमें राग न करो। रागका उदय दशम गुण स्थान पर्यन्त होता है। अर्हत् भक्ति भी ससार उच्छित्तिका हेतु इसीसे मानी गई है। क्योंकि गुणोंमें अनुराग ही भक्ति है मेरा तो यह विचार है, परकी भक्ति औपचारिक है परमार्थसे आत्माका शुद्ध रूप ही ससारका घातक है। देवीजी, मेरा बाबाजीसे आबाल कालसे स्नेह है, और यदि इनसे स्नेह छूट गया, तब दगम्बर पद होना दुर्लभ नहीं परन्तु यह होना अशक्य है। आप जो स्वाध्याय करे, अध्यात्म मुख्यताके हेतु ही कर। यदि अवकाश पुण्योदयसे मिला, तब बाबाजीका एकबार दर्शन अवश्य करूगा। शेष सर्वसे दर्शन विशुद्धि।

श्रीयुक्ता महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि—

बाबाजी महाराज हो तब हमारी धर्म स्नेह पूर्वक इच्छाकार कहना और वहां न होवे तो उनका पता देना। बुढी दादीसे हमारी धम स्नेह पूर्वक दर्शन विशुद्धि। और आप पढानेमें काल लगाना। तथा थोडा अभ्यास यानी कण्ठ करनमे समय लगाना। शेष स्वाध्यायमें समय लगाना। यह मनुष्य आयु महान पुण्यका फल है। सयमका साधन इसा पर्यायमें होता है। सयम निवृत्ति रूप है। निवृत्तिका मुख्य साधन यही शरीर है।

श्रीयुक्ता देवी महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। निरन्तर जैनधर्मके ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेसे चित्तमें अपूर्व शान्ति होती है। शरीरकी रक्षा धर्मसाधनके अर्थ पापप्रद नहीं। विषयसे निवृत्ति होने पर तत्त्वज्ञानकी निरन्तर भावना ही कुछ कालमें ससार लतिका का छेदन कर देती है। केवल देह शोषण मोक्षमार्ग नहीं। अन्तरग वासनाकी विशुद्धिसे ही कर्म निर्जीर्ण होते हैं। किसी पदार्थमें भीतरसे आसक्त नहीं होना चाहिये। अपनी भावना ही आपकी आत्माका सुधार करनेवाली है। जहांतक बने यही कार्य करनेमें समय बिताना। बाईजीका सस्नेह जैजिनेन्द्र। ऐसा उपाय करना जिससे यह पराधीन पर्याय न पावना पड़े। वैसे तो सवपर्याय पराधीन है। परलौकिक दृष्टया यह महती परतन्त्रता की जननी हैं। शेष कुशल है।

——

श्रीयुक्ता महादेवी सरल परिणामिनीको दर्शन विशुद्धि—

इस पर्यायसे जहातक बने सयम और स्वाध्यायकी पूर्ण रक्षा करना। ससार संततिका नाश इसी पद्धतिसे होता है। बाईका आशीर्वाद। बेटी फुलदेवी! तुम सन्तोष पूर्वक स्वाध्याय करो और अपनी विस्मृतनिधिको प्राप्त करो। सन्तोष ही परम सुख है।

——

श्रीयुक्त महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

आपके समाचार ब्रह्मचारी छोटेलालजीसे मिल जाते हैं। आप स्वसमयको स्वाध्यायमें ही लगाते हैं और मनुष्यजन्मका यही कर्तव्य है। परोपकार की अपेक्षा स्वोपकारमें विशेषता है। परोपकार तो मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है। बल्कि यों कहिये परोपकार मिथ्यादृष्टिसेही होता है। सम्यग्दृष्टिसे परोपकार हो जावे यह बात अन्य है परन्तु उसक आशयमें उपादेयता नहीं। क्योंकि जावत् औदयिकभाव हैं उनका सम्यक्दृष्टि अभिप्रायसे कर्त्ता नहीं, क्योंकि वे भाव अनात्मज हैं। इसका यह तात्पर्य है कि वह भाव अनात्मज मोहादिकर्म उनके निमित्तसे होते हैं। अतएव अस्थायी हैं। उन्हे सम्यक् ज्ञानी क्या उपादेय समझता है? नहीं समझता है। इसके लिखनेका तात्पर्य यह है। जैसे सम्यग्दृष्टिके यदि श्रद्धा है जो न मैं परका उपकारी हूं न पर मेरा है, निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे उपकार होजाना कुछ अन्तरंग श्रद्धानका बाधक नहीं। इसी प्रकार अनुपकारादि भी जानना। सत्पथके अनुकूल श्रद्धा ही मोक्षमार्ग की आदि जननी है।

श्रीयुक्ता धर्मपिपासु महादेवीको बाईका आशीर्वाद—

आपसे हमारी बारबार यही एक सम्मति है कि अर्थ प्रकाशिकाका स्वाध्याय करो और यही मैय्याकी सम्मति है। हमारा भी यथासमय वहाँ आना होगा। चातुर्मास्यका निश्चय नहीं।

मेरी दादी व श्री दीपचन्द्रकी मा तथा चिरजीवनी दोनों शकुन्तलासे आशीर्वाद। पढ़नेको कह देना। श्री दीपचन्द्रकी छोटी माको भी पढाना। अपने लोकोंकी पर्याय पराधीन है। परन्तु इसका खेद न करना। ससारमें सर्व पराधीन है। अतएव इनके नाशका उद्यम जिसने कर लिया, वही स्वाधीन और सुखी है। यह जीव जैसे पराधीन है वैसे ही स्वाधीन भी हो सकता है। यह सर्व अपनी कर्तव्यताका फल है जो आत्मा कर्मार्जनकी प्रचुरतासे नरकादि निवासोंका अधिपति होता है वही उनका निराशकर शिव नगरीका भूपति भी हो सकता है, इससे कभी भी अपनी आत्माका तुच्छ न समझना।

——

श्रीयुक्ता महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया समाचार जाने। मेरे कोई शल्य नहीं है। आप कोई चिन्ता न करना, अपना धर्म ध्यान साधो, इसीमें कल्याण है। बाईका आशीर्वाद–बेटी, सानन्द धर्म साधो।

———

श्रीयुक्ता देवीको दर्शन विशुद्धि—

तात्विक बुद्धिसे सर्व कार्य करना। जो भी औदयिक भाव होते हैं, वह यदि सम्यग् ज्ञान पूर्वक उनके स्वरूप पर दृष्टि देकर आचरण किये जावे तब क्षायिकभावके तुल्य कार्यकारी हो जाते हैं। सर्व तरफसे चित्तवृत्तिको पृथक् करना समुचित है।

श्रीयुक्ता महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि-

पत्र आया, समाचार जाने, जहांतक बने परपदार्थसे ममत्व बुद्धि हटाना यही सार है। यद्यपि धार्मिक पुरुषोंका स्नेह धर्म-साधक है तथापि अन्तमें हेय ही है। अणुमात्र राग भी बाधक ह। बहुत रागकी क्या कथा? स्वाध्याय ही परम तप ह।

श्रीमान् त्रिलोकचन्द्रजी साहिब दर्शन विशुद्धि -

मैं आपको यह कहना उचित समझता हू आप कल्याणपथके अथ कदापि व्यग्र न होना, क्योंकि वह तो निजवस्तु हें। यदि पराई होती तब प्रार्थना और व्यग्रताकी आवश्यकता है। देखो शुभोपयोगमें श्रीअर्हद्भक्ति और अशुभोपयोगमें अङ्गनादि प्रेम कारण पडते हैं परन्तु शुद्धोपयोगमें किसीकी आवश्यकता नहीं। मैं अगहन सुदि ११ को श्री १००८ गिरिराज की यात्राके अर्थ प्रयाण करूगा तबतक वहीं रहूगा। मेरी सबसे धर्मप्रेम कहना।

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि –

पत्र आया, महराजसे मेरा प्रणाम कहना और वे यदि अन्यत्र गमन कर गये हों तब वहां पर पत्र द्वारा लिख देना। मैं श्री नैनागिर द्रोणागिर सिद्धक्षेत्रोंकी वन्दना करता हुआ श्री अतिशय क्षेत्र पपौराकी बन्दनाको आया हू। यहां पर अगहन

बदी २ तक रहूँगा, फिर श्री अतिशय क्षेत्र अहारकी बन्दना कर अगहन बदि १० तक बरूआसागर पहुँचुगा। अभी स्वास्थ्य अच्छा है। किन्तु जिन परिणामोंसे स्वात्महित होता है उनका स्पर्श भी अभी तक अन्तस्तलमें नहीं हुआ है। हम लोग केवल निमित्तकारणोंकी मुख्यतासे वास्तविक धर्मसे दूर जारहे हैं। जहां पर मनोवचन कायके व्यापारका गम्य नहीं वह पद-प्राप्ति आत्मबोधके बिना हो जावे, बुद्धिमें नहीं आता। यह क्रिया जो उभयद्रव्यके सयोगसे उत्पन्न हुई है, कदापि स्वकीय-कल्याणमें सहायक नहीं हो सकती। अतएव औदयिकभाव तो बधका कारण है ही। किन्तु क्षयोपशम और उपशमभाव भी कथचित परद्रव्यके निमित्तसे माने गये हैं। अत जहांतक परपदार्थकी संपर्कता आत्माके साथ रहेगी वहां साक्षात् मोक्ष-मार्ग प्राप्ति दुर्लभा ही नहीं किन्तु असम्भवा है। अत अन्तरगसे अपने ही अन्तरगमें अपनेही द्वारा अपनेही अर्थ अपनेको गंभीर-दृष्टिसे परामश करना चाहिये क्योंकि मोक्षमार्ग एकही है, नाना नहीं।

एको मोक्षपथो य एष नियतो द्रग्ज्ञप्तिवृत्यात्मक
स्तत्रैवस्थितिमेतियस्तमनिशं ध्यायेच्चतंचेतति।
तस्मिन्नेवनिरन्तर बिहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोवश्य समयस्यसारमचिरान्नित्योदय विन्दति॥

मोक्षमार्ग तो दर्शनज्ञानचारित्रात्मक ही है, उसीमें स्थिति करो और निरंतर उसका ध्यान करो, उसीका निरंतर चिंतवन

करो, उसीमें निरतर विहार करो, तथा द्रव्यान्तरको स्पर्श न करो, ऐसा जो करता है वही मोक्षमार्ग पाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि स्वच्छन्द होकर आत्मद्रव्यसे भ्रष्ट हो जाओ। किन्तु अन्तरग तत्त्वकी यथार्थ प्रतीति करना ही हमारा कर्त्तव्य है। व्यवहार क्रियामें मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।

— —

श्रीयुत लाला त्रिलोकचन्द्र योग्य दर्शन विशुद्धि—

भाई! जहा तक बने प्रसन्न रहना और मोक्षमार्गकी सिद्धिक अर्थ व्यग्र न होना, क्योंकि शांतिके बिना सुख नहीं और सुख बिना मोक्ष नहीं, अत जो कुछ बने शांतिसे बिताओ। मैं फाल्गुन तक अभीष्ट स्थान श्री गिरिराज पहुचूगा। यदि आप लोगोंका समागम रहा तब अच्छा है। वहांसे दो दिन बाद आऊगा।

— —

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने, बाबाजी महाराजका स्वास्थ्य अच्छा है और वह यहांसे बनारस जावगे। संसारमें प्राणीमात्र मोहके वशीभूत होकर चिन्तातुर रहते हैं और मोहमें ऐसा होना स्वाभाविक है परन्तु महापुरुष वही है जो इस मोहको कृश करनेमें सतकर है। इस मोहने नारायणलक्ष्मणको हा रामभी पूर्ण न कहने दिया। और प्राणपंखेरू उड़ाकर ही संतोष न किया किन्तु आगामी भी जबतक इसका सत्त्व है पिण्ड न छोड़ेगा। अत: जीवन, मरण, लाभ, अलाभमें समता रखना ज्ञानीका कार्य है।

" सर्वं सदैव भवति नियत स्वकीय "
कर्म्मोदयान्मरणजीवित दु खसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु पर परस्य
कुर्य्यात्पुमान्मरण जीवित दु खसौख्यम् ॥

अन्यथा कोई भी मनुष्य ससारमें ऐसा नहीं है जो उदयागत कमकी वेदनाको पृथक् कर सकै। असाताके उदयमें श्रीआदिदेवकी सहायता करनेमें भरतादिसे महाप्रभु समर्थ न हो सके और जब सातोदय आया तब श्री श्रेयांसको स्वयमेव दान देनेकी प्रतिक्रियाका स्वप्नमे प्रतिबोध हुआ। अत यदि बच्चेकी आयु है तब आप चिन्ता कर या न कर, अनायास बालकको आराम हो जायगा। विशुद्धि परिणाम ही निरोगतामें सहायक होता है। संक्लेश परिणाम तो बाधक कारण ही है फिर इस ससारमे और क्या रखा है? कदली स्तभके समान असार है अत सब विकल्प छोड स्वात्मकी ओर आने की चेष्टा करना ही श्रयोमार्गकी भूमिकामें पदारोपण करना है। आप अब अपनी माता राम और भाई लक्ष्मणजी और उनकी धमपत्नी आदिसे मेरी धर्म वृद्धि कहना और कहना कि बुद्धिका फल आत्महितमें लगाना ही है। यो तो ससारमें अनेक जन्म मरण किये और करने पड़ेगे। यदि आत्महितमें एकवार भी प्रयत्न कर लिया तब फिर इन अनन्त यातनाओंसे अपनेको रक्षित कर सकोगे। अत उपाय करते जाओ परन्तु चिन्ता न करो, जो भविष्य है वह अनिवार्य है। हां जिन महापुरुषोने इस

मोहमल्लको विजय कर लिया उनका भविष्य प्रांजल प्रभात है। शेष कुशल है।

— —

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

बेटी, ससार-बन्धन बहुत ही विकट समस्या है। इससे सुलझना अल्प पुण्यसे नहीं होता। यह जीव यदि अन्त करणको स्थिर कर विचार कर और रागादि विभाव परिणामोकी परपरा पर एकबार परामर्श कर उनके पृथक् होनेपर यत्नशील हो तब ऐसी कोई अलौकिक शक्तिका उदय होगा जिससे आगामी उनकी सतति इतनी उपक्षीण रूपसे चलेगी जो अल्पकालमें उसका सवस्वही नहीं रहेगा। मोक्षमार्गमे वास्तविक मूल कारण सवर है। इसके बिना निर्जराकी कोइ प्रतिष्ठा नहीं। अत सिद्धान्तवेत्ताओको उचित है जो स्वात्मतत्त्वकी इस संवर तत्त्वसे रक्षा करें। लौकिक प्रयत्न बधनहीमें सहायक होते हैं और यदि यही जीव सम्यक् अभिप्रायसे आशिक भी रागादिकोंमें हानि करनेका प्रयत्न करे, तब मोक्षमार्गके पथपर आरूढ हो सकता है। आत्माकी कथनीसे आत्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। किन्तु उसके अनुकूल प्रवर्तनसे उसका लाभ हो सकता है। इसका अर्थ यह है जो आत्म ज्ञाता दृष्टा है उसमें जो रागादिकी कलुषता है वही उसके स्वरूपकी नाशक है। उसे न होने द यही हमारा पुरुषार्थ है, शेष तो विडम्बना है। जब तक यह न होगा तब तक शुभाशुभ क्रियाओंसे इसी दु खमय ससारकी

वृद्धि होगी और निरन्तर पराधीनताके बन्धनमें पर्यायकी पूर्णता करनी होगी। आप अपने सरल परिणामोंका फल प्राप्त करनेमें व्यग्र न होंगे। एक समय वह आवेगा जो अनायास ही वह हो गा मेरी तो सम्मत्त है, जो व्यग्रतामें सिवाय आकुलताके और कुछ नहीं होता। मोक्षमार्ग तो शान्तिमें है। रागादिककी कलुषता कितनी दुःखदायी है? अन्य दुःख ही नहीं आत्मकल्याणकी प्राप्ति तो आपमें है, पर तो निमित्त मात्र है, अतः अपने ही बाधक, साधक कारणोंको देखो, जो बाधक हों उन्हें हटाओ, साधक कारणोंको संग्रह करो।

— —

श्रीयुत महाराज मेरे परम उपकारी महाशय इच्छाकार—

आपने लिखा सो अक्षरशः सत्य है, आत्माका स्वभाव ज्ञाता तथा दृष्टा ही है, तथा तत्त्वदृष्टिसे दो भाव नहीं किन्तु एकही भाव है। किन्तु पदार्थके द्विविधपनसे ये आत्माके ज्ञातृत्व और दृष्टत्व व्यवहार होता है। इसकी विकृतावस्थामें औदयिक रागादिकोंकी उत्पत्ति होती है। अथवा यों कहिये, औदयिक रागादिक भावोंकी सहचारिता ही इसकी विकृतावस्था है। दीपकका दृष्टान्त जो दिया गया है वह यथार्थमें उसमें जो शिखकी सरलता है और प्रकाशक भाव है वही वास्तविक दीपक है। अन्य जो विक्रिया हैं पवनादि निमित्तक हैं। यह बात लिखनेमें अति सरल है, परन्तु जबतक प्रवृत्तिमें न आवें तबतक हम सरीखे अनुभवशून्य ज्ञानियोंका यह ज्ञान

अन्धेकी लालटेन के सदृश है। आपकी बात नहीं। क्योंकि आप एक विशेष अन्तरगसे विरक्त पुरुष हैं। अन्तरगकी निर्मलता बिना बाह्य व्यापार सुखकर नहीं, सुख तो अन्तरगमें रागादिक दोषके अभावमें है। उसके जाननेका उपाय यथार्थमें तत्त्वज्ञान है। तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिका मूल उपाय आगमाभ्यास और निरीहचित्तवृत्ति है।

— —

श्रीयुक्ता महादेवी योग्य दर्शन विशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने ससारमें क्षोभ होता है, हो, इसको औदयिक भाव जानो। इसमें विकल न होना। विकलताकी उत्पत्ति यदि हुई तब सम्यग्ज्ञानी और अनात्मज्ञानीमें क्या अन्तर हुआ? आप अपनेको कदापि व्यग्र न होने दे, यह बाह्यसयोग जिन भावोसे होता है, वह परनिमित्तक होनेसे अनात्मीय है, तब यों जो परवस्तु है, उसके अनात्मीय होनेमें कौनसी शका है। अत आपत्ति और अनुपपत्ति अनात्मिक जान कदापि व्यग्र न होना। अज्ञ मनुष्योंके सम्बोधनार्थ नारकादिक दु खोंका निरूपण कर आचार्य महाराजने उन्हें पापसे रक्षित होनेकी चेष्टा की है। तथा स्वर्गसुखका लोभ दिखाकर उन्हें शुभोपयोगमें लगाया है। सम्यग्ज्ञानी शुभ और अशुभ दोनोंको अनात्मीय जानता है। अत उसको मोहके सद्भावमें भी केवल पूर्णस्वरूपप्राप्तिके अर्थ ही अभिप्राय रहता है, अत वह संसारके सभी कार्योंमें मध्यस्थ रहता है। माध्यस्थता ही

मोक्षमार्गकी प्रथम यात्रा है। इसीके बलसे सम्यग्ज्ञानी नाना प्रकारके आरम्भादि अन्य बाह्य अपराध होने पर भी नियतकी निर्मलतासे अनन्त ससारके दण्डसे रक्षित रहता है। अपनी आत्माको कदापि तुच्छ न मानना। जब आशिक निमल ज्ञान हो गया तब कदापि ससारकी यातनाका पात्र यह आत्मा नहीं हो सकता। अत अपने निर्मल परिणामोंके अनुकूल बाह्य परिस्थिति पर स्वामित्वकी कल्पनाका त्याग करना ही ज्ञानीका काम ह। चारित्र मोहकी उद्व गता आत्मगुणकी घातक नहीं घातका अर्थ यहा विपर्ययता, हे न्यूनाधिक नहीं। न्यून होना अन्य बात है, विपर्ययता अन्य वस्तु है। दर्शन माहके अभावमें आत्मा निरोग हो जाता हे जैसे रोगी मनुष्य लघन शुद्ध होने के बाद निरोग तो हो जाता है, परन्तु अशक्त रहता हैं। क्रमसे पथ्यादि सेवन कर जैसे अपनी पूर्ण बलिष्टताका पात्र हो जाता हैं, तद्वत् सम्यग्दृष्टि निरोग होकर क्रमसे श्रद्धाका विषय लाभ करते हुए एक दिन अपने अनन्त सुखादिकका भोक्ता हो जाता है। इसमें अणुमात्र सदेह नहीं। अत जब आपन वास्तविक आत्मदृष्टिका लाभ प्राप्त कर लिया तब इन क्षुद्र उपद्रवोसे भयकी आवश्यकता नहीं।

— —

भैया त्रिलोकचन्द्रजी—

आप जब अन्तरगसे धर्मके प्रेमी हो तब इन क्षुद्र भावोंके द्वारा नहीं त्रासित हो सकते। निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धका

निषेध नहीं, परन्तु सोचो तो सही, वस्तु तो वस्तु ही है। क्या उसके उत्कर्षका जनक अन्य हो सकता है ? कदापि नहीं। यथा—

जोधेहि कदे जुद्धे राएण कदत्ति जबदे लोओ,
महववहारेण कद णाणावरणादि जीवेण"

जोधा तो युद्ध करते हैं, व्यवहार ऐसा ही होता है राजाने युद्ध किया, ऐसा ही व्यवहारसे कथन होता है, कि जीवके द्वारा ज्ञानावरणादि किये गये। इसीतरह मोक्षमार्गका उदय तो भव्य जीवके काल पाकर होता हैं, और लोकमें ऐसी परिपाटी हैं जो अमुकके उपदेशसे अमुकको मोक्षमार्गका लाभ हुआ। इस विषयमें समय पाकर लिखगे। आजकल कुछ बाह्य शरीरकी व्यवस्था अवस्थाके अनुकूल हो रही है उचित ही है। अब चित्तमें व्यग्रताके कार्यसे उदासीनता रहती है।

——

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

सानद धर्मका साधन होता होगा। जितने अश रागादिक न्यून हों वही धर्म है। बाह्य व्यापारसे जितनी उपरमता हो वही रागादिककी कृशतामें हेतु है। जितना बाह्य परिग्रह घटै उतनी ही आत्मामें मूर्च्छाके अभावसे शान्ति आती है और जो शान्ति है वही मोक्षमार्गकी अनुभावक है, अत जहांतक बने यही पुरुषार्थ कीजिये। सर्वसे आभ्यन्तर निवृत्ति रखिये। क्यों-

कि तत्त्व निवृत्ति रूप है। "यथा निवृत्ति रूप यतस्तत्त्वम्।" स्वाध्यायको आचार्य महाराजने अन्तरंग तपमें गिना है। और श्री कुंदकुंदस्वामीने आगमज्ञानही त्यागियोंके लिये मुख्य बताया हैं। और आगमज्ञानका फल मुख्य भेदज्ञान है।

श्रीयुक्ता महादेवीजी दर्शन विशुद्धि—

बेटी! जहांतक बने स्वाध्यायमें काल बिताओ। कोई किसीका हितकर्ता नहीं। आत्म परिणामकी निर्मलता ही सुखका मूल कारण है। वह वस्तु किसीके द्वारा नहीं मिलती। उसका कारण आप ही हैं।

श्रीमती महादेवी दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। तुम्हारी निर्मलताही संसारसे पार कर देवेगी। बाईजीका सस्नेह जै जिनेन्द्र।

श्रीयुक्त महाशय त्रिलोकचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। पत्रसे प्रतीति आती है कि अब आपकी दृष्टि स्वस्वरूपकी ओर सलग्न है, यही तो कर्तव्य है। अनादि कालसे यह बात यदि एकबार भी हो जाती तो यह जीव इन अनन्त यातनाओंका पात्र न होता, निरन्तर संसारी जीव विद्यमान पर्यायमें आत्मीय कल्पना कर स्वकीय स्वरूपसे वंचित हो रहा है। यद्यपि यह पर्याय विजातीय उभय

द्रव्यके सम्बन्धसे बनी हुई है। उन दोनोंके कार्यों में केवल स्वात्म-कल्पना करना ही मिथ्याभाव है। उस पर्यायमें जितना स्वकीय अंश है, उतना अपना माने तब कल्याण होनेमें विलम्ब न हो, परन्तु मोहोदयमें यह होता नहीं। जैसे रागादिक भाव आत्मा और मोहके मेलसे होते हैं, उनको सर्वथा निजके मानना ही मिथ्या है। हां, निजके हैं, परन्तु उनके होनेमें पुद्गल कर्मोदय निमित्त हैं। अत निमित्तकी अपेक्षा पुद्गलके और उपादान दृष्टिसे यदि अपने माने तब उन विभावोंको दुःखजनक मान उनके पृथक् करनेमें प्रयास करे और अनायास सुखका पात्र हो जावे। हमारी आत्माम वर्तमान पर्यायम रागादिक न हो ऐसी भावना मेरी अल्पमतिम तो मिथ्या ही जान पडती है। रागादिकोका दशम गुणस्थान तक तरतम रूपमें होना अनिवार्य है। रागादिक हो इसकी चिन्ता न करें। इस बातकी चिन्ता आवश्यक है, कि यह जो भाव हैं, सो विभाव हैं, क्षणिक हैं, व्यभिचारि हैं। इनको परकृत जान, इनम हर्ष विषाद न करे। यही चिन्ता मोक्षमार्गकी प्रथम सोपान है। इसके बिना मोक्ष मार्गका पथिक नहीं हो सकता। सम्यग्ज्ञानी जीवके जो निन्दा गर्हा होती है, यह मोहका कार्य है। वह इसको भी निज स्वरूप नहीं जानता। देशव्रत महाव्रत भी होते हैं। इनको कषायोदय का कार्य समझता है। इसमें भी उपादेय बुद्धि नहीं। जिस कार्यके करनेसे आत्माको बध हो, सम्यग्दृष्टि कदापि उसमें उपादेय बुद्धि नहीं करता। अत पर्यायके अनुरूप जो परिणाम

हों उनको कौन रोक सकता है ? किन्तु हमारी आभ्यन्तर दृष्टि यथार्थ होना ही उन भावोंके फन्देको छोडनेमें तीक्ष्ण असि धाराका काम करती है। हम और आपको तो ऐसे अनिष्ट समागमही नहीं जो व्याकुल कर सकें। सप्तम नरकके नारकीकी दशा पर विचार करिये। जहा तीव्रतम अनिष्टोके कारण होनेपर भी जीव निज स्वरूपका परिचय करनेमे समर्थ हो जाता है। यही कारण है जो हर गतिमें सम्यक् होता है। अत बाह्य निमित्तोको गौण कर अपने पुरुषाथका सभालना ही अपना भला होनेमें कारण हैं। आप जहां तक बने इस समय इसी ओर लक्ष्य रखिये। जो भील द्रोणाचार्यके पुतलेसे धनुर्विद्यामें अर्जुनके सदृश निष्णात हो गया। परमात्माका स्मरणसे भी परमात्मा होता है, जैस दीपकसे दीपक। किन्तु जैसे अरणि-निर्मथनसे अग्नि होती है, ऐसे अपनी उपासनासे भी परमात्मा हो जाता है। अत इस बातका दुख करनेकी कोई आवश्यकता नहीं, जो इस कालमे केवली और श्रुतकेवली नहीं। क्या करें ? श्रुतकेवली और केवलीके निकट क्षायिक सम्यक्दर्शन होता है। परन्तु स्वय श्रुतकवली हो उसे क्षायिक सम्यक् हो तब इतर निमित्तकी क्या आवश्यकता है। विशेष क्या लिखू ? इन निमित्त कारणोकी प्रपञ्चताको त्यागकर अपने पुरुषार्थको सभालिये। तृणकी ओर पहाड है। शेष सर्वसे यथायोग्य।

—•—

श्रीयुत् महाशय मगलसैनजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

आप सानन्द पहुच गये होगे। आपके जानेके बाद यहाँ बाबू सखीचन्द्रजी आए थे। उन्होंने निमियाघाटमें २५ बीघे जमीन ली है। एक उत्तम धर्मशाला बनवायगे। अग्रवाल हैं। बहुत उत्तम आदमी है। हम तो कार्तिक बाद जावेंगे। आप स्वाध्याय करो, व्यर्थकी कल्पनामें कुछ लाभ नहीं। जो आपकी आजीविका है उसे सहसा न मिटा देना। कल्याणका मार्ग आत्मामें है। केवल परावलम्बी होकर कल्याण चाहनेसे कल्याण नहीं होता। आपकी इच्छा सो करना।

——

लाला मगलसनजी दर्शन विशुद्धि—

स्वाध्याय करो, वही कल्याणका मार्ग है। व्यर्थ मत भटको, मैं बाबाजी महाराजकी आज्ञानुसार रहूगा। किन्तु एकबार सागर जाना है। अभी मेरी पुस्तक आदि वैसी ही रखी हैं। उनकी व्यवस्था परमावश्यक है। शेष सर्वसे यथायोग्य।

——

लाला मगलसैनजी दर्शन विशुद्धि—

हमें किसीका सहवास पसन्द नहीं। और न इससे कल्याण होता। कल्याणका मार्ग एकतामें है। अनकताहीने तो ससार बना रखा है। यदि हम अपना हित चाह तो परसे ममत्व मिटावें, न कि जोडें। हमको तो अन्तरगसे यहा आनेसे विशेष लाभ नहीं हुआ, प्रत्युत कई अशमें हानि हुई। मैं उस समागमको

चाहता हू जो परकी आशा न करे। बाबाजी मेरे मित्र तथा पूज्य हैं। जैसी उनकी आज्ञा होगी वैसा ही करू गा। शेष सर्वसे यथा योग्य।

लाला मगलसैनजी दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने, बहुत क्या लिखें? कल्याणपथ कल्याणमें है। हम अन्यमे देखते हैं। हे भगवन् आत्मन् अब तो इस पराधीन बधनके जालसे पृथक् हो। इन परद्रव्योंके आश्रय छोड। गाथा ४०८, ४०६ समयसार लिग छोडनेका यह आशय है जो देहाश्रित लिगमें ममत्व छोडना। अनादिसे परके आश्रयही तो रहे, इसीका नाम बध है। मोक्ष नाम तो परसे भिन्न होनेका है। अब ऐसा दिन आवे जो इन परवस्तुओंसे ममत्व छूटे। निर्मल आशय ही मोक्षमार्ग है। क्रिया तो परद्रव्याश्रित त्यागनी ही पड़ेगी। हमने २५ दिन मौन रखा। आगे एक दिन मौन और एक दिन बोलनेका विचार है। जितने झझटसे बच उतने ही कल्याणके पास जावगे।

श्री महाराज इच्छाकार—

आपकी जो आज्ञा हो सो मुझे स्वीकार है। मगलसैनका पत्र आया कि सर्वसे उत्तम स्थान शिखरजी है। मैं ६ मास आपके साथ रहू गा, यह दृढ निश्चय है, किन्तु एकबार विशेष कार्यके लिये सागर जाना पड़ेगा और एक मासमें आपके पास

आऊंगा। वहां आदमीके ले जानेकी आवश्यकता नहीं, आने-जानेमें व्यर्थ व्यय होगा। यदि आपका शुभागमन हुआ तब आप जैसी आज्ञा करेंगे सो करूंगा। यदि आप न आसकें तो मैं वहा आऊं या सागर होकर आऊं ? शीघ्र उत्तर दीजिये। आपका पत्र आने पर वैसा करूं। जब तक आपका पत्र न आवेगा, यहीं रहूंगा। शेष सर्वसे यथा योग्य कहना।

श्रीयुत लाला मगलसैनजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

समताभाव ही मोक्षाभिलाषी जीवोंका मुख्य कर्तव्य है और सर्व शिष्टाचार है। उपयोग लगानेकी आशासे सवत्र जाईये, परन्तु अन्तिम बात यही है, जो चित्त वृत्तिको शान्त करनेका प्रयत्न ही सराहने योग्य है।

श्रीयुत लाला मगल सैनजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। प्रशस्त भाव ही ससार बन्धनके नाशका मूल उपाय है। शास्त्रज्ञान तो उपायका उपाय है। यावत् हमारी दृष्टि परोन्मुख है, तावत् स्वोन्मुख दृष्टिका उदय नहीं। यद्यपि ज्ञान स्वपर व्यवसायी है। परन्तु जब स्वोन्मुख हो तब तो स्वकीय रूपका प्रतिभास हो। ज्ञान तो केवल स्वरूपका प्रतिभासक है, परन्तु तद्रूप रहना, यह बिना मोहके उपद्रवके ही होगा। कहने और करनेमें महान अन्तर है। आप जानते हैं, प्रथम सम्यग् दर्शनके होते ही जीवके पर

पदार्थोंमें उदासीनता आ जाती है। और जब उदासीनताकी भावना दृढतम होजाती हैं, तब आत्मा ज्ञाता, दृष्टा ही रहता हैं। अत आतुर नहीं होना। उद्यम करना हमारा पुरुषार्थ हैं। हम आज ईसरी जा रहे हैं। अत पत्र ईसरीके पतेसे देना। यद्यपि यहाँकी जलवायु बहुत उत्तम है, पर तु उदयकी बलवत्ता वहीं ले जा रही है। श्रीप्रभुपार्श्वके ज्ञानमें जो देखा है वही होगा।

श्रीयुत लाला मगलसैनजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने, मेरी सम्मति तो यह है। इस कथोपकथनकी शैलीको छोड कर कर्तव्य पथमें लग जाना ही श्रेयस्कर है। कल्याण करनेवाला आप है। पर पदार्थ की आकाक्षा ही वाधक है। परके सम्बन्धसे रागादिक ही होते हैं। और रागादिकोक नाशके अर्थ ही हमारी चेष्टा है। अत नि शक होकर निराकुलता रूप उद्योगद्वारा ही आत्मतत्त्वकी विशुद्धि होगी। अत जो आकुलताके उत्पादक हों, उन्हे सर्वथा त्यागकर स्वात्म गुणकी निर्मलता ही हमारा ध्येय होना चहिये, अपनी मण्डलीको मोक्षमार्गमें साधक जान अभी आप सर्व लोक एकान्त, अपने ही ग्रामोंके उपवनोंमें २ या ४ दिन अवसर पाकर रहनेका अभ्यास करोगे, अधिक लाभ उठाओगे। हमारे सवारी आदिका त्याग है। अन्यथा हम उन्हीं आपके उपवनोंमें झोपडी बना कर रहते क्योंकि बाह्य साधन वहां योग्य थे। चिन्ता किसी बातकी न करना। मेरी

तो यह धारणा है कि मोक्षकी भी चिन्ता न करो। मोक्षपथमें लगजाना चिन्ताकी अपेक्षा अति श्रेयस्कर है। बुधजन छहढाला अवश्य देखना, बहुत ही मार्मिक शब्द है तथा एकबार जब आपकी मण्डली इकट्ठी हो उसका पाठ करना। अधिक क्या लिख? शेष यथा योग्य।

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी दर्शन विशुद्धि—

अब तो ऐसी परिणति बनाओ जो हमारा और तुम्हारा विकल्प मिटे। यह भला, वह बुरा, यह वासना मिट जावे, यही वासना बधकी जान है। आजतक इन्हीं पदार्थोंमें ऐसी कल्पना करते करते ससारहीके पात्र रहे। बहुत प्रयास किया तो इन बाह्यवस्तुओंको छोड दिया। किन्तु इनसे कोई तत्त्व न निकला। निकले कहासे? वस्तु तो वस्तुमें है। परमें कहांसे आवे? परक त्यागसे क्या? क्योंकि यह तो स्वय पृथक् है। उसका चतुष्ठय स्वय पृथक। किन्तु विभावदशामे जिसक साथ अपना चतुष्ठय तद्रूप हो रहा है उस पर्यायका त्याग ही शुद्ध स्वचतुष्ठयका उत्पादक है। अत उसकी ओर दृष्टिपात करो, लौकिक चर्चाको तिलाजलि दो। आजन्मसे वही आलाप तो रहा, अब एक बार निज आलापकी तान लगाकर तानसेन होजावो। अनायास सर्व दुःखकी सत्ता-का अभाव हो जावेगा। विशेष क्या लिखे? आप अपने साथीको समझा देना। यदि अब द्वन्द्वमें न पड़े तो बहुत ही अच्छा होगा। द्वन्द्वके फलकी रक्षाके अर्थ फिर द्वन्द्वमें

पड़ना कहांतक अच्छा होगा सो समझमें नहीं आता। इसे शान्ति मिलेगी, प्रत्युत बहुत अशान्ति मिलेगी, परन्तु अभी ज्ञानमें नहीं आती, धतूरेके नशेमें धतूरेका पत्ता भी पीला दीखता है। आपका अनुरागी है समझा देना।

श्रीमान लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

बन्धुवर! कल्याणपथ निर्मल अभिप्रायसे होता है। इस आत्माने अनादिकालसे अपनी सेवा नहीं की, केवल पर पदार्थों के सग्रहमें ही अपने प्रिय जीवनको भुला दिया। भगवान् अर्हन्तका यह आदेश है जो अपना कल्याण चाहते हो तो इन परपदार्थों में जो आत्मीयता है वह छोडो। यद्यपि परपदार्थ मिलकर अभेदरूप नहीं होते, किन्तु हमारी कल्पनामें वह अभेद रूपही हो जाते हैं। अन्यथा उनके वियोगमें हमे क्लेश नहीं होना चाहिये। धन्य उन जीवोंको हैं जो इस आत्मीयताको अपने स्वरूपमें ही अवगत कर अनात्मीयपदार्थो से उपेक्षित हो कर स्वात्मकल्याणके भागी होते है। आपका अभिप्राय यदि निर्मल है तब यह बाह्य पदार्थ कुछ भी बाधक नहीं, और न साधक हैं। साधक बाधक तो अपनी ही परिणति है। ससार का मूल हेतु हम स्वय है। इसी प्रकार मोक्षके भी आदि कारण हमही हैं। और जो अतिरिक्त कल्पना है, मोहजभावों-की महिमा है। और जबतक उसका उदय रहेगा, मुक्ति लक्ष्मीका साम्राज्य मिलना असम्भव है। उसकी कथा तो अजेय है।

सोतो दूर रही, उसके द्वारा जो कर्म समूहरूप होगये हैं, उनके अभाव बिना भी शुद्ध स्वरूपात्मक मोक्षप्राप्ति दुर्लभ है, अत जहांतक उद्यमकी पराकाष्ठा इस पर्यायसे होसके केवल एक मोहके कृश करनेमें ही उसका उपयोग करिये। और जहांतक बने परपदार्थके समागमसे बहिर्भूत रहनेकी चेष्टा करिये। यही अभ्यास एकदिन दृढ़तम होकर ससारके नाशका कारण होगा। विशेष क्या लिखू ? विशेषता तो विशेषहीमें है। आजकलका वातावरण अति दूषित है, इससे सुरक्षित रहना ही अच्छा है।

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

मैं क्या उपदेश लिखू ? उपदेश और उपदेष्टा आपकी आत्मा स्वयम् हैं। जिसने आपनी आत्मपरिणतिको मलिन भावोंसे तटस्थता धारण कर ली, वही ससारसमुद्रके पार हो गया। यह बुद्धि छोडो। परसे न कुछ होता है न जाता है। आपहीसे मोक्ष और आपहीसे ससार है।

श्रीयुत महाशय दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने।

आपने जो आस्राव्य और आस्रावकके विषयमे प्रश्न किया उसका उत्तर इस प्रकार है।

आत्मा और पुद्गलको छोडकर शेष ४ द्रव्य शुद्ध हैं। जीव और जो पुद्गल ही २ द्रव्य हैं, जिसमें विभावशक्ति है। और

इन दोनोमें ही अनादि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध द्वारा विकार्य्य और विकारकभाव हुआ करते हैं। जिस कालमें मोहादिकर्मके उदयमें रागादिरूप परिणमता है, उस कालमें स्वय विकार्य होजाता है। और इसके रागादिक परिणामोंका निमित्त पाकर पुद्गल मोहादि कर्मरूप परिणमता है। अत उसका विकारक भी है। इसका यह आशय है जीवके परिणामको निमित्त पाकर पुद्गल ज्ञानावरणादि रूप होते है, और पुद्गलकमके निमित्त पाकर जीव स्वय रागादिरूप परिणम जाता है। अत आत्मा आस्रव होने योग्य भी है और आस्रवका करनेवाला भी है। इसी तरह जब आत्मामें रागादि नहीं होते उस कालमें आत्मा स्वय सम्वार्य्य और सवरका करनेवाला भी है। अर्थात आत्माके रागादि निमित्तको पाकर जो पुद्गल ज्ञानावरणादि रूप होते थे अब रागादिकके बिना स्वय तद्रूप नहीं होते, अत सवारक भी है।

अत मेरी समति तो यह है जो अनेक पुस्तकोंका अध्ययन न कर केवल स्वात्मविषयक ज्ञानकी आवश्यकता है और केवलज्ञान ही न हो किन्तु उसके अन्दर मोहादिभाव न हो। ज्ञान मात्र कल्याण मार्गका साधक नहीं। किन्तु रागद्वेषकी कल्मषतासे शून्य ज्ञान मोक्षमार्गका साधक क्या, स्वय मोक्षमार्ग है। जो विष मारक है वही विष शुद्ध होनेसे आयुका पोषक है। अत चलते, बैठते, सोते, जागते, खाते, पीते यद्वा तद्वा अवस्था होते जो मनुष्य अपनी प्रवृत्तिको कलकित नहीं करता वही जीव कल्याण मार्गका पात्र है।

बाह्यपरिग्रहका होना अन्य बात है। और उसमें मूर्च्छा होना अन्य बात है। अत बाह्यपरिग्रहके छोडनेकी चेष्टा न करो, उसमें जो मूर्च्छा है, ससारकी लतिका वही है, उसको निर्मूल करनेका भगीरथ प्रयत्न करो, उसका निर्मूल होना अशक्य नहीं। अन्तरगकी कायरताका अभाव करो, अनादि कालका जो मोहभावजन्य अज्ञानभाव हो रहा है उसे पृथक करनेका प्रयत्न करो। अहर्निश इस चिन्तामें लौकिक मनुष्य सलग्न रहते है कि हे प्रभा। हमारे कर्मकलक मिटा दो, आप बिना मेरा कोई नहीं, कहां जाऊ ? किससे कहू ? इत्यादि करुणात्मक वचनों द्वारा प्रभुको रीझावनेका प्रयत्न करते हैं, प्रभुका आदेश है —यदि दु खसे मुक्त होनेकी चाह है, तब यह कायरता छोडो, और अपने स्वरूपकी चितना करो। ज्ञाता दृष्टासे बाह्य मत जाओ। यही कल्याणका पथ है।

तदुक्तम्—यः परमात्मा स एवाह योह स परमस्तत ।
अहमेव मयोपास्य नान्य कश्चिदिति स्थिति ॥

जो परमात्मा है वही मै हू और मैं हू सो परमात्मा है। अत मैं अपने द्वारा ही उपास्य हू, अन्य कोई नहीं, ऐसी ही वस्तु मर्यादा है।

यह अत्युक्ति नहीं। जो आत्मा रागद्वेष शून्य होगया वह निरन्तर स्व स्वरूपमें लीन रहता है तथा शुद्धद्रव्य है। उप कार अपकारके भाव रागी जीवोंमें ही होते हैं। अत परमात्मा की भक्तिका यही तात्पर्य है जो रागादि रहित होनेकी चेष्टा

करो। भक्तिका अर्थ गुणानुराग, सो यह भी अनुराग, यद्यपि गुणोंके विकासका बाधक है, फिर भी उसका स्मारक होनेसे बीचली दशामें होता है किन्तु सम्यग्ज्ञानी उसे अनुपादेय ही जानता है। अत आत्माके बाधक कारणोंमें अरुचि होना ही आत्मतत्त्वकी साधक चेष्टा है। अत परमात्माको ज्ञानमें लाकर यह भावना भावो, यही तो हमारा निजरूप है। यह परमात्मा और मैं इसका आराधक इस भेद-भावनाका अन्त करो। आप ही तो परमात्मा है। आत्मा परमात्माके अन्तरको स्पष्टतया जान अन्तरके कारण मेट दो अर्थात् अन्तरका कारण रागादिक ही तो हैं। इन्हे नैमित्तक जान इनमें तन्मय न हों। यही इनके दूर होनेका उपाय है, जहातक अपनी शक्ति हो इन्हीं रागादिक परिणामोंके उपक्षीणका प्रयास करना। जब हमें यह निश्चय होगया जो आत्मा परसे भिन्न है तब परमें आत्मीयताकी कल्पना क्या हमारी मूढताका परिचायक नहीं है? तथा जहा आत्मीयता है वहां राग होना अनिवार्य है। अत यदि हम अपनेको सम्यक् ज्ञानी मानते हैं, तब हमारा भाव कदापि परमें आत्मीयताका नहीं होना चाहिए। रागादिकोका होना चारित्र मोहके उदयसे होता है। हो, किन्तु अहबुद्धिके अभाव होनेसे अल्पकालमें, निराश्रित होनेसे स्वयमेव नष्ट हो जावेगा।

तीर्थंकर प्रभु केवल सिद्ध भक्ति करते हैं। अत उनके द्वारा अतिथि सविभाग रूप दान होनेकी संभावना नहीं।

श्रीयुत महोदय खेमचन्दजी तथा श्रीमूलशंकर बाबूजी योग्य दर्शन विशुद्धि—

पत्र आपका आया, समाचार जाना। आप जानते है आत्माका स्वभाव देखना जानना है। और वह देखना जानना हर अवस्थामें रहता है। हां, तरतम भावसे रहता है। परन्तु ज्ञानका अभाव नहीं होता यही आत्माके अस्तित्वका द्योतक है। वही एक ऐसा गुण है जो ससारके सब व्यवहारोंका परिचय करता है। इस गुणमें न सुख देनेकी शक्ति है, न दुःख देनेकी शक्ति है। केवल इस गुणका काम जानना है। जब आत्मामें ज्ञानावरणका सम्बन्ध रहता है और उसकी क्षयोपशम अवस्थामें ज्ञानका हीनाधिक रूपसे विकास होता है। और जितना ज्ञानावरणका उदय रहता है, वह ज्ञान गुणका विकास नहीं होने देता। इस प्रकार इस ज्ञानकी अवस्था रहती है। तथा दर्शनावरण, अन्तराय कर्मका भी इसी तरह सबध है। दर्शनावरणकी ज्ञानावरणके सदृश ही व्यवस्था है। अन्तराय कर्म भी इसी तरहका है। किन्तु इन तीन घातियोंके सदृश आत्मामें एक मोहनीय कर्म है, जिनका प्रभाव इन सबसे विलक्षण और अनुपम है। उसके २ भेद हैं। एकका नाम दर्शनमोहनीय, और एकका नाम चारित्रमोहनीय है। यह दर्शनशक्ति और चारित्रशक्तिके विकासका प्रतिबध नहीं करता, किन्तु कामला रोगकी तरह श्वेत शंखको पीत शंख दिखानेकी तरह विपरीत श्रद्धान द्वारा शरीरादिकमें आत्मत्व कल्पनाको कराके आत्माको अनन्त ससारका पात्र बना देता है।

यह ससार कोई वस्तु नहीं। केवल कर्मादिकके सबंधसे रागद्वेष वशीभूत होकर नाना शरीरोमें आत्माका सयोग और वियोगरूप जन्म और मरण ही का नाम ससार हे। और इस ससारका मूल कारण निमित्त कारणकी अपक्षा मोहकर्म और उपादान कारणकी अपेक्षा माह, राग द्वेषमय आत्मा है—अत सर्वसे पहल हमारा यह दृढ निश्चय होना चाहिये कि इस ससारकी उत्पत्तिमे हमारा ही हाथ हे। अल्पकालको मान लो कि मोहरूप पुद्गल भी तो कारण ह। ठीक हे। परन्तु उसपर आपका क्या अधिकार ह ? क्या आपमें ऐसी सामथ्य हे जो उन पुद्गलोको अन्यथा परिणमन करा द ? नहीं हे। हा, यह अवश्य हे जो आपका रागादि परिणाम ह उस विभाव जान उसके होने पर यदि उसमे आसक्त नहां हुए तब आगामी उस रूपका तीव्र बध न होगा, जेसा कि आसक्त होने पर होता ह। ऐसा अभ्यास करने पर कभी एसा अवसर आवेगा—जो रागादिक होनेपर भी आगामी उन रागादिकोका बध न होगा।

नारकी नपुसक ह। यदि उनको सम्यग्दर्शन हो गया, तब नपुसकादि प्रकृतियोका बध नहीं हाता। तथा कर्माकी अनेक अवस्था हो जाती ह, यह पुरुषाथका काम ह, केवल कथासे नहीं।

इससे यह तत्व निकला, यदि अ तरगसे रागादिक करनेका अभिप्राय आत्मासे निकल गया तब रागादिक होनेपर भी उनके स्वामीत्वका अभाव होनेसे आत्मा अनत ससारका पात्र

नहीं बनता। अभिप्राय ही संसारका जनक है। जिसे इस वृश्चिक डकने नहीं डसा, वह संसारके बंधनसे मुक्त हो चुका। परन्तु हम अभिप्रायको निर्मल करनेकी चेष्टा नहीं करते। केवल दुराग्रहसे किसी मतके पक्षपातमें अपनी आत्माको पतन कर संसारको तुच्छ और अपनेको महान् माननेमें अपनेको कृतकृत्य मान लेते हैं। फल इसका यह होता है जो हम कभी भी शांतिके पात्र नहीं बनते। सत्यमार्ग तो यह है जो आत्मा ज्ञाता दृष्टा है उसे मोहने रागद्वेषात्मक बना रखा है। उस मोहको दूर कर रागद्वेषरूप विकारोंसे बचा लेना ही उसका कल्याण है।

यह रागद्वेष कैसे छूटे?

उसका यह उपाय है। प्रथम तो स्वानुभवसे आत्मतत्त्वकी यथार्थ श्रद्धा करे। स्वानुभव कैसे हो? जैसे परोन्मुख होनेसे परका ज्ञान होता है। तथा जो परका जाननेवाला है, वही जो स्वोन्मुख होता है, अपना जाननेवाला स्वयमेव हो जाता है। केवल उपयोग बदलनेकी आवश्यकता है। तब यह सहज ही समझमें आ जावेगा। आत्मा परको क्या जानता है? परके निमित्तसे जो आत्मामें परिणमन होता है वह आत्मा जानता है। व्यवहार ऐसा होता है जो आत्मा परका जानने वाला है, जैसे दर्पणमें जब मुखका प्रतिबिंब पड़ते हैं तब ऐसी प्रतीति होती है, जो दर्पणमें मुख है। वास्तव रीतिसे दर्पणमें मुख नहीं, किन्तु मुखके सदृश परिणमन हो रहा है। किन्तु वह परिणमन मुखका

नहीं, दर्पण ही का है। इसी तरह ज्ञेयकी दशा जानना।

परन्तु हमारे अनादिका इतना बलवान मोह है जो हम ज्ञानमें प्रतिभासित पदार्थों को अपना मान अनुकूल और प्रतिकूलकी कल्पना कर किसीके सद्भाव और किसीके असद्भाव करनेमें अपनी सपूर्ण शक्तिका दुरुपयोग करते हैं। फल इसका रज्जूमें सर्प माननेके सदृश भयावह ही होता है।

जानना मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोके होता ह। परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञयमिश्रित ज्ञानका स्वाद लेता है। स्वादका अर्थ यह है, जो उसकी कल्पना पदाथके सम्बन्ध और अन्तरग मोहके उदयसे इष्टानिष्टात्मक हो जाती है। सम्यक्-दृष्टि परको पर मान केवलज्ञान ही अपना मान इष्टानिष्ट कल्प-नासे मुक्त रहता है। यही उसके ज्ञानमें विलक्षणता है। अत ज्ञेयके भासमान होनेपर भी दु खी नहीं होता, और इतर दु खी हो जाता है।

उनक प्रश्नोंके उत्तर प्राय सक्षेपसे इस पत्रमें आगये हैं। हमको अवकाश नहीं तथा आजकल गर्म्मी अधिक पडती है। अत अब पत्र विशेष न देना।

आप तो सानन्दसे मोक्षमार्गका स्वाध्याय करो और विशेष झझटोंमे न पडो। यदि विशेष अवकाश मिले तब पञ्चास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार और अष्टपाहुडका स्वाध्याय कर तत्त्व-की निमलता करो, तथा सर्व समालोचनाओंका त्यागकर स्वा-त्मगत दोषोंकी समालोचना करो। जब यह काय होचुके तब

अन्य कार्यों की चिन्ता करना, व्यर्थ समालोचना आत्मोत्कर्ष की साधक नहीं।

इस संसारसे वही जीव पार जावेगा जो स्वागत विपरीताभिनिवेशको त्यागकर सम्यग्ज्ञानी हो। रागद्वेषकी निवृत्ति करेगा। और जो मतक पक्षपातमें पड़कर अन्यको भला बुरा कह कर ही कृतार्थ आपको मान लेता है वह किस दशाका स्वामी होगा ? भगवान् जाने। सत्य-निर्णयके अर्थ मतोंका अभ्यास करना बुरा नहीं किन्तु केवल पांडित्य कलाके सम्पादन निमित्त अभ्यास करना निवृत्ति मार्गमें साधक नहीं।

महाशय दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने।

सम्यक् दृष्टिके दर्शनमोहके अभावसे, स्वपर भेदज्ञान होगया है। इसीसे अभिप्रायमें उसके रागमें राग नहीं और द्वेषमें द्वेष नहीं है। किन्तु चारित्रमोहका उदय होनेसे राग भी होता है और द्वेष भी होता है-हा-तथा जो उसे अबन्ध कहा, उसका तात्पर्य अनन्तानुबंधी कषाय और मिथ्यापत्रके द्वारा जो अनन्त संसारका भाजन था, वह मिट गया। तथा जो मिच्छ-तहुड इत्यादि ४१ प्रकृतिका बंध होता था वह चला गया। सर्वथा बंधका भी अभाव नहीं और न सर्वथा इच्छाका अभाव है। इसकी चर्चा समयसारमें स्पष्ट है। विशेष वहांसे जानना। निर्जरा अधिकारमें अच्छी तरहसे इसका विवेचन है। श्री छोटेलालजी इन्दोर गये हैं।

पत्र आया, समाचार जाने।

दर्शनोपयोगकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त कही है। क्योंकि उपयोग निरंतर चंचल रहता है। और ध्यानकी उत्कृष्ट स्थितिकी भी अन्तर्मुहूर्त है। तथा ध्यानको आचार्योंने ज्ञानकी स्थिरता कही है। अत दर्शनोपयोग भी अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं हो सकता। तथा अन्तर्मुहूर्तका बहुत भेद है। समयाधिक आव लिसे जघन्य अन्तमुहूर्त प्रारंभ होता है और १ समय कम २ घडीका उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त होता है। मध्यमके बहुत भेद है। सतत् दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोगका यह अर्थ है। जो चेतनका परिणमन २ तरहका होता है। उपयोग १ कालमें १ ही होता है। चाहे दर्शनोपयोग हो चाहे ज्ञानोपयोग हो। छद्मस्थके क्रमवर्ती उपयोग होते हैं। अर्थात् दर्शनोपयोग पूर्वक ज्ञानोपयोग होते हैं। केवली भगवानके आवरणका अभाव होनेसे १ ही समयमें चेतनका परिणमन स्वच्छ होनेसे दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग दोनोका युगपत् व्यवहार है। वास्तवमें केवलज्ञानहीमें स्वात्म जाननेको दर्शनोपयोग और परके जाननेको ज्ञानोपयोग कहते हैं। पंडित राजेन्द्र कुमारजीने जो निद्राके कालमें ज्ञानोपयोग कहा उसका अर्थ यह है—निद्रा जो है सो दर्शनके घात करनेवाली है। अत ज्ञानोपयोग रहनेमें कोई बाधा नहीं। राजवार्तिकमें छदमस्थके दर्शन पूर्वक ज्ञानोपयोग होता है। यह बात सामान्यसे है। स्मरणादिमे यह बात नहीं। परम्परामें कुछ बाधा नहीं।

दर्शन विशुद्धि ।

अपडिक्कमणं दुविहं, अपचक्खाणं तहेव विण्णेय—

अप्रतिक्रमण दो प्रकारका है। और अप्रत्याख्यान भी दो प्रकारका है। पूर्व अनुभूत जो विषय रागादि उनके स्मरण-रूप अप्रतिक्रमण है। और भावि रागादि विषयकी जो आकांक्षा है तद्रूप ही अप्रत्याख्यान है। जिस द्रव्यके निमित्तसे रागादिक होते थे उसका त्याग जो न करना उसे द्रव्य अप्रतिक्रमण कहते हैं। और उसके निमित्तसे जो रागादिक भाव होते थे उनका त्याग न करना यह भाव अप्रतिक्रमण है। वास्तवमें आत्मा अनात्मरूप जो रागादिक है उनका अकर्ता है। अन्य-था अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान का जो दो प्रकारका उपदेश है वह व्यर्थ हो जावेगा। जो अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान-को द्रव्य और भाव द्वारा दो प्रकारका बताया है वह द्रव्य और भावका परस्पर निमित्त और नैमित्तिक भावको विस्तारताको जनाता हुआ आत्माको कर्तृपना जनाता है। इससे यह आया परद्रव्य निमित्त है, और आत्माके जो रागादि भाव है वे नैमित्तक हैं। यदि ऐसा न माना जावे अर्थात् रागादिक भावोंको परद्रव्य निमित्त न माना जावे तब आत्मा ही उनका निमित्त होगा ऐसा माननेसे आत्मामें नित्य ही कर्तृत्व आ-वेगा जो असंगत है।

इसी प्रकार अप्रत्याख्यानको दो प्रकारका जानना। इसका सम्बन्ध भावि कालसे है।

(२) प्रदेश प्रकम्पनसे क्षेत्रान्तर नहीं होता। अत इसकी सहायताके अर्थ धर्म द्रव्यकी आवश्यकता नहीं।

(३) मोक्ष हेतु तिरोधायि भावका एक ही अर्थ है। विभक्ति भिन्न होनेसे मूल पदार्थका वही अर्थ है। एक बार यदि आपको २ दिनका अवकाश मिले तब समक्षमें सर्व निर्णय होगा।

तत्त्व चर्चा ही कल्याणका पथ ह। परन्तु साथ साथ आभ्यन्तरकी निर्मलता होना चाहिये। हम लोक बाह्य निमित्तोंकी सुन्दरता पर मुग्ध हो जाते हैं। और जो कल्याणका वास्तविक मार्ग है, उसका स्पर्श भी नहीं करते, निमित्त कारणोमें बलवत्ता नहीं, और न होगी। केवल हमारी कल्पना इतनी प्रबल उस विषयमें अनादि कालसे चली आ रही है, जो अपने स्वरूपकी यथार्थताको राहुकी तरह ग्रास किए है। एक बार भी यदि उसका स्वाद आ जावे तब यह आत्मा अनत ससारका पात्र नहीं हो सकता। हमने बाजारसे कुछ दिनको वस्तु लेना छोड दिया है। अत आपके पत्र ही के उपर उत्तर लिख दिया।

सर्व आगम और सकल परमात्माकी दिव्य वाणीमें यही आया है जो परकी सगति छोड आत्माकी सगति करो यही कल्याणका पथ है।

श्रीयुत् माननीय महाशय बाबू खेमचन्दजी योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। यहां पर प० देवकीनन्दनजी-की पञ्चाध्यायीवाली टीका नहीं है।

आप पदार्थों के ज्ञानके अर्थ यदि कुछ न्याय ग्रन्थोंका अवसर पाके अभ्यास कर लें, तब बहुत ही लाभदायक होगा।

ससार रूपी बनमें भ्रमते हुए जीवने वास्तव मार्गका अनुसरण नहीं किया, इसीसे इसकी यह अवस्था हो रही है। कोई मार्गकी प्राप्ति कठिन नहीं। केवल दुराग्रहके त्यागनेकी आवश्यकता है। पहले तो इस शरीरसे ही इसका ममत्व छूटना कठिन है। ऊपरी दृष्टिसे इसे छोड़कर भी जीव सुखी नहीं होता। बहुतसे धर्मके ऊपरी अशको जानकर सप्रदायके आवेगमें ससारको मिथ्यादृष्टि समझनेमें ही अपनी प्रभुता समझते ह। कल्याण मार्गका पोषक यह सप्रदाय प्रेम नहीं। कल्याण मार्गका कारण तो सम्यग्ज्ञान पूर्वक कषायोंका निग्रह है। कषायोकी प्रवृत्ति उसीके रुक सकती है जिसके अतरग मूर्च्छाके अर्थ बाह्य परिग्रह नहीं। श्री कुन्द कुन्द महाराजका कहना है कि बाह्य प्राणोंके वियोग होनेपर बध हो अथवा न भी हो, नियम नहीं। यदि प्रमाद योग है बध है, प्रमाद योगके न होनेपर बध नहीं। किन्तु बाह्य उपाधिके सद्भावमें नियमस बध है। क्योकि उसका स्वत्व ही अतरग मूर्च्छासे रहता है। अत यदि कल्याणकी ओर लक्ष्य है तब इस कषाय शत्रुके निपातके अर्थ अपने परिणामोंक अनुरूप इसी ओर लक्ष्य देनेकी आवश्यकता है। यदि वर्तमानमें त्याग न हो सके तब कमसे कम उदासीन भाव तो होना ही चाहिये। यह उदासीन भाव ही कालान्तरमें वीतराग भावका उत्पादक हो जावेगा। यह जो

विकल्प आत्मामें होते हैं उन्हे औदयिक भाव जान अनात्मीय ही है ऐसा दृढ निश्चय रहना ही स्वरूप प्राप्तिका मुख्य उपाय है। जैसे उष्ण जल उष्णताके अभावमें ही तो शीत जल होगा, इसी तरह इन औदयिक भावोंकी असत्तामे ही तौ आत्मिक गुणोंका वास्तविक विकास होगा।

आजकल मनुष्य दुनियाकी समालोचना करता है, परन्तु अपनी समालोचनाका ध्यान नहीं, जब तक अपने परिणामों पर दृष्टि नहीं, कुछ नहीं।

जो भाई साहब (मूलशकरभाई) यहां आते हैं उनसे धर्म स्नेह कहना। बहुत भद्र प्रकृतिके है।

——

श्रीयुत मूलशकरजी योग्य दर्शन विशुद्धि।

आप सानन्द आईये। और जहातक बने जिसके साथ धार्मिक स्नेह हो उसे परिग्रहसे रक्षित रखिये। कल्याणका मार्ग निर्ग्रन्थ ही है। इस मूर्च्छाने ही जिन धर्मम नाना भेद कर दिये, इसका मूल कारण मूर्च्छा (परिग्रह) है। इसके सदभावमें अहिसा धर्मका विकास नहीं होता अत जहा मूर्च्छा है वहीं परिग्रह है और जहा परिग्रह है वहा महाव्रतका अभाव है।

मनकी चचलताका कारण केवल अनादि कषायकी वासना है, और कुछ कारण नहीं।

मनके जानेका दु ख नहीं, दु ख तो इष्टानिष्ट कल्पनाओंका है। वास्तवमें उपाय तो जो बन सके तो उदय आनेपर हर्ष

विषाद न हो। यदि हो भी जावे तब उत्तर कालमें वासना नहीं रहने दे, वहीं तक रहने दे।

जैसा मनुष्य लौकिक कार्यों में मग्न होकर धर्मकी ओर चित्त नहीं लगाता, यदि इसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओंसे हम अन्तरंग से चित्त वृत्ति हटाकर अपनी आभ्यन्तर दृष्टिको स्वात्माकी ओर लगा दें, कल्याणका पथ आपसे आप मिल जावे। गरम जलको ठण्डा करनेका उपाय उसकी उष्णता दूर करना ही है। आप आकुलित मत हो। घर रहकर भी अन्त करण निर्मल हो सकता है अपनी आत्मापर भरोसा रखना ही मोक्षका प्रथम उपाय है। परके द्वारा कल्याण न किसीका हुआ, और न होता, और न होगा। निमित्तका अर्थ तो यही हैं, मुखसे उपदेश देगा परन्तु उसका मम तो स्वय जानना होगा तथा उसे स्वय करना होगा।

श्रीयुत महाशय—दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने।

हमारे पास इतना समय नहीं, जो इतने लम्बे प्रश्नोंके उत्तर देनेमें लगावे, यह तो सर्व सम्मुख चर्चाके द्वारा शीघ्र ही हल हो जाते हैं। तत्त्वकी मननताका मुख्य प्रयोजन कलुषताका अभाव है। आप जहां तक बने पचास्तिकाय तथा अष्ट पाहुड, प्रवचन सारका अवकाश पाकर स्वाध्याय करना। अवश्य स्वीय श्रेयो

मार्गमें सफलीभूत होंगे। मै अभी हजारी बाग नहीं गया, कुछ दिनका विलम्ब है।

श्रीयुत् महाशय खीमचन्दजीको दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। भाई साहब। सकोचकी कोई बात नहीं। आप धर्मात्मा जीव हैं। परन्तु अधिक परिग्रहही तो पापकी जड है। जितना सग्रह किया जावे उतना ही दु खजनक है। निष्परिग्रही होना ही मोक्षमार्ग है। जिनके आभ्यन्तर मूर्च्छा गई वही तो मुनि हैं—मोक्ष मार्गी है। इस कालमें स्वाग रह गया—वचनकी पटुता तथा पाडित्यकला मोक्षमार्ग नहीं। मोक्षमार्ग तो रागद्वेषकी निवृत्ति है। जो भाई आना चाहते हैं, आवे, मैं ५ अप्रिल तक इसरी ही रहूगा। आप गाढ रीतिसे स्वाध्याय करिए। कल्याणका पथ भेदज्ञान है। अत जहातक बने उसपर दृष्टि दीजिए और भक्ष्य पदार्थ भोजनमें आवे इसकी चेष्टा करीए। जब कभी आप मिलगे, विशेष बात कहूगा—अपने छोटे भाईसे दर्शन विशुद्धि। तथा अपनी मडलीसे यथा योग्य।

श्रीयुत् महाशय दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। आत्माके जो मध्य आठ प्रदेश हैं वह सावरण हैं। समुद्घातके समय घनाकार लोकके मध्य

ही उनकी स्थिति रहती है। और शेष प्रदेश ३४३ घनाकार लोकके प्रदेशोंमें विस्तृत हो जाते हैं इसमें अखण्डताका क्या बाध है ? आत्माके अनुजीवी गुणोंका ही वास्तवमें घात होता है, उनमें एक सुख नामक भी गुण है उसका घातक कोई कर्म नहीं। यह सब घातिया कर्म ही उसके घातक हैं। अतएव त्रयोदश गुणस्थानमें ही उसका पूर्ण विकास होता है।

१ भाईके विषयमें जो पूछा था, सो यदि उनने नियम ले लिया है कि आजीवन मैं औषध न लूंगा तब हम यह सम्मति नहीं दे सकते हैं कि वह औषध लेवें और एक दिन बाद उपवास-का नियम लिया है तब यह भी सम्मत्ति नहीं दे सकते हैं कि उसे भंग कर, किन्तु यदि उपवासके दिन आरम्भ आदि व्यापार करते हैं तब अनुकूल त्याग नहीं। क्योंकि आगमानुकूल उपवास का दिन धर्म ध्यानमें जाना चाहिये। कषाय निग्रहके अर्थ उपवास किया जाता है। तथा "शक्तितस्त्यागतपसी" यदि शक्तिको उल्लघकर उपवास है तब वह भी आगम प्रतिकूल है। जिस उपवासमें अन्तरग शान्ति न आवे वह उपवास निर्जरा तो दूर रहा पुण्य बन्धका भी कारण नहीं। तप उनको कहते हैं जहां इच्छाका निरोध है, जहां अन्तरंगमें सक्लेशता हो, वहां काहेका इच्छा निरोध ? परन्तु आजकल मनुष्य आवेगमें आकर कठिन प्रतिज्ञा कर बैठते हैं, पश्चात् विपाककालमें दुखी हो जाय हैं। श्री राजचन्द्रजीके नये विषयमें पूछा सो क्या लिखे ? हमारी समझमें उनकी बात यातो उनके अनुयायी समझे या

जिन्होंने सुना है कि उनका अभिप्राय यह था वह समझ, मैं क्या लिखू । जो भाइ आना चाहते हैं वह चैत्रके अन्ततक आवे तब तो अच्छा। अन्यथा मै बैशाख बदि २ को हजारीबाग जाऊ गा।

महाशय दर्शन विशुद्धि—

पत्र आया, समाचार जाने। आजकल गर्म्मीका प्रकोप है— उपयोगकी निर्मलताका बाधक है। अत कुछ दिन बाद प्रश्नोंके उत्तर लिखनेकी चेष्टा करू गा। भाई खेमचन्दजी, मैं कुछ जानता नहीं। केवल मुझे श्रद्धा है अत जहांतक बने मुझे इस विषयमें न पाडिए। श्री जयचन्दजी साहब जो लिख गए उससे अच्छा लिखनेवाला अब नहीं है। आपकी समाजमें समयसारके रोचक हैं। मेरा ऐसा अभिप्राय है जो समयसार सर्व अनुयोगोंकी विधि मिलाता है। उसके हरेक गाथामे अपूर्व रस भरा है। जो मर्मी हो सो जाने। मेरा सर्व मण्डलीसे धर्म प्रेम कहना। और कहना शान्तिका मार्ग न तो स्थानमें है और न शास्त्रोमें हैं न ऐसा नियम है जो अमुक शास्त्रसे ही शान्ति मिलेगी। शान्तिका मूल मार्ग मूर्च्छा के अभावमें है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

समाप्त

* श्री जिनाय नम *

समाधिमरण पत्र-पुंज

ये पत्र स्वय उदासीन ब्र० मौजीलालजी सागर निवासी वालोके समाधिलाभार्थ उनके प्रत्युत्तरमे पूज्य प० गणेशप्रसाद जी वर्णीके द्वारा लिखे गये हैं। एकएक पक्तिमें आत्मर सिकता झलक रही है। अत जब कभी मन स्थिर हो शान्ति पूवक प्रत्येक वाक्यका परिशीलन करके उसके मत०यको हृदय गत करना चाहिये। (पत्र नहीं, ये माक्षमार्गमें प्रवेश करनेके लिये वास्तविक रत्न हैं।)

—o—

योग्य शिष्टाचार'

सत्य दान तो लोभका त्याग है। और उसको मैं चारित्र का अंश मानता हू। मूर्छाकी निवृत्ति ही चारित्र है। हमको द्रव्यत्यागमें पुण्य बंधकी ओर दृष्टि न देनी चाहिये, किन्तु

इस द्रव्यसे ममत्वनिवृत्ति द्वारा शुद्धोपयोगका वर्धक दान समझना चाहिये। वास्तविक तत्त्व ही निवृत्तिरूप है। जहां उभय पदार्थका बध है वहीं ससार है। और जहां दोनों वस्तु स्वकीय २ गुणपर्यायोंमें परिणमन करते है वही निवृत्ति है यही सिद्धात है। कहा भी है—

—श्लोक—

सिद्धातोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यता।
शुद्ध चिन्मयमेकमेव परमज्योतिस्सदैवास्म्यहम् ॥
एते ये तु समुल्लसति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा
स्तेऽह नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्य समग्रा अपि ॥

अर्थ यह सिद्धान्त उदार चित्त और उदार चरित्रवाले मोक्षार्थियोको सेवन करना चाहिये कि मैं एक ही शुद्ध (कर्म रहित) चैतन्य स्वरूप परम ज्योतिवाला सदैव हू। तथा ये जो भिन्न लक्षणवाले नाना प्रकारके भाव प्रगट होते हैं, वे मै नहीं हू क्योंकि वे सपूर्ण परद्रव्य हैं।

इस श्लोकका भाव इतना सुन्दर और रुचिकर है जो हृदय में आते ही ससारका आताप कहा जाता है पता नहीं लगता। आप जहा तक हो अब इस समय शारीरिक अवस्थाकी ओर दृष्टि न देकर निजात्माकी ओर लक्ष्य देकर उसीके स्वास्थ्यकी औषधिका प्रयत्न करना। शरीर परद्रव्य है, उसकी कोई भी

अवस्था हो उसका ज्ञाता दृष्टा ही रहना। सो ही समयसार में कहा है-

—गाथा—

को णाम भणिज्ज बुहो परद्व्व मम इम हवदि द्व्वं।
अप्पाणमप्पणो परिगह तु णियद वियाणतो ॥

भावार्थ यह परद्रव्य मेरा है ऐसा ज्ञानी पण्डित नहीं कह सकता। क्योंकि ज्ञानी जीव तो आत्माको ही स्वकीय परिग्रह मानता या समझता है।

यद्यपि विजातीय दो द्रव्योंसे मनुष्य पर्यायकी उत्पत्ति हुई है किन्तु विजातीय २ दो द्रव्य मिलकर सुधाहरिद्रावत् एकरूप नहीं परिणमे हैं। वहा तो वर्ण गुण दोनोंका एकरूप परिणमना कोई आपत्तिजनक नहीं है किन्तु यहां पर एक चेतन और अन्य अचेतन द्रव्य हैं। इनका एकरूप परिणमना न्याय प्रतिकूल है। पुद्गलके निमित्तको प्राप्त होकर आत्मा रागादिकरूप परिणम जाता है। फिर भी रागादिक भाव औदयिक हैं। अत बन्धजनक हैं, आत्माको दु खजनक हैं, अत हेय है परन्तु शरीरका परिणमन आत्मासे भिन्न हैं। अत न वह हेय हैं और न वह उपादेय है। इसही को समयसारमें श्री महर्षि कुन्दकुन्दाचार्यने निर्जराधिकारमें लिखा है—

—गाथा—

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जम्हा तम्हा गच्छदु तहवि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥

अर्थ -यह शरीर छिद जावो अथवा भिदजावो अथवा ले जावो अथवा नाश हो जावो जैसे तैसे हो जावो तो भी यह मेरा परिग्रह नहीं है।

इसीसे सम्यग्दृष्टिके परद्रव्यके नाना प्रकारके परिणमन होते हुए भी हर्ष विषाद नहीं होता। अत आपको भी इस समय शरीरकी क्षीण अवस्था होते हुए कोई भी विकल्प न कर तटस्थ ही रहना हितकर है।

चरणानुयोगमें जो परद्रव्योंको शुभाशुभमें निमित्तत्वकी अपेक्षा हेयोपादेयकी व्यवस्था की है, वह अल्पप्रज्ञके अर्थ है। आप तो विज्ञ हैं। अध्यवसानको ही बधका जनक समझ उसीके त्यागकी भावना करना और निरतर "एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो" अर्थात् ज्ञानदर्शनात्मक जो आत्मा है वही उपादेय है। शेष जो बाह्य पदार्थ हैं वे मेरे नहीं हैं।

मरण क्या वस्तु है? आयुके निषेक पूर्ण होने पर मनुष्य पर्यायका वियोग तथा आयुके सद्भावमें पर्यायका सबध सो ही जीवन। अब देखिये जैसे जिस मन्दिरमें हम निवास करते हैं उसके सद्भाव असद्भावमें हमको किसी प्रकारका

हानि लाभ नहीं, तब क्यों हर्ष-विषादकर अपने पवित्र भावों को कलुषित किया जावे। जैसे कि कहा है---

—श्लोक—

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो।
ज्ञानं सत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्॥
अस्यातो मरण न किंचिद् भवेत्तद्भिः कुतो ज्ञानिनो।
नि शङ्कः सतत स्वयं स सहज ज्ञान सदा बिन्दति॥

अर्थ—प्राणोके नाशको मरण कहते हैं। और प्राण इस आत्माका ज्ञान है। वह ज्ञान सत् रूप स्वय ही नित्य होनेके कारण कभी नहीं नष्ट होता है। अत इस आत्माका कुछ भी मरण नहीं है तो फिर ज्ञानीको मरणका भय कहांसे हो सकता है। वह ज्ञानी स्वय नि:शक होकर निरतर स्वाभाविक ज्ञानको सदा प्राप्त करता है।

इस प्रकार आप सानन्द ऐसे मरणका प्रयास करना जो परपरा मातास्तन्य पानसे बच जाओ। इतना सुन्दर अवसर हस्तगत हुवा है, अवश्य इससे लाभ लेना।

आत्मा ही कल्याणका मन्दिर है अत परपदार्थोंकी किंचित् मात्र भी आप अपेक्षा न कर। अब पुस्तक द्वारा ज्ञानाभ्यास करनेकी आवश्यकता नहीं। अब तो पर्यायमें घोर परिश्रम कर स्वरूपके अर्थ मोक्ष-मार्गका अभ्यास करना उचित है। अब ऐसा ज्ञान शस्त्रको रागद्वेष शत्रुओंके ऊपर निपात करनेकी

आवश्यकता है। यह कार्य न तो उपदेष्टाका है और न समाधिमरणमें सहायक पडितोंका है। अब तो अन्य कथाओंके श्रवण करनेमें समयको न देकर उस शत्रु सेनाके पराजय करनेमें सावधान होकर यत्न पर हो जावो।

यद्यपि निमित्तको प्रधान माननेवाले तर्कद्वारा बहुतसी आपत्ति इस विषयमें ला सकते हैं। फिर भी कार्य करना अन्तमें तो आपहीका कर्तव्य होगा। अत जबतक आपकी चेतना सावधान है, निरतर स्वात्मस्वरूप चितवनमें लगा दो।

श्री परमेष्ठीका भी स्मरण करो किन्तु ज्ञायककी ओर ही लक्ष्य रखना क्योंकि मैं "ज्ञाता दृष्टा" हू, ज्ञेय भिन्न हैं, उसमें इष्टानिष्ट विकल्प न हो यही पुरुषार्थ करना और अतरगमें मूर्छा न करना तथा रागादिक भावोको तथा उसके वक्ताओंको दूरहीसे त्यागना। मुझे आनद इस बातका है कि आप नि शल्य हैं। यही आपके कल्याणकी परमौषधि है। ॥ इति ॥

महाशय योग्य शिष्टाचार—

आपके शरीरकी अवस्था प्रत्यह क्षीण हो रही है। इसका ह्रास होना स्वाभाविक है। इसके ह्रास और वृद्धिसे हमारा कोई घात नहीं, क्योंकि आपने निरतर ज्ञानाभ्यास किया है अत आप इसे स्वय जानते है अथवा मान भी लो शरीरके शैथिल्यसे तद् अवयवभूत इन्द्रियादिक भी शिथिल हो जाती हैं तथा द्रव्येन्द्रियके विकृत भावसे भावेन्द्रिय स्वकीय कार्य करनेमें

समर्थ नहीं होती है किन्तु मोहनीय उपशम जन्य सम्यक्त्वकी इसमें क्या विराधना हुई। मनुष्य शयन करता है उसकाल जाग्रत अवस्थाके सदृश ज्ञान नहीं रहता किन्तु जो सम्यग्दर्शन गुण ससारका अन्तक है उसका आंशिक भी घात नहीं होता। अतएव अपर्याप्त अवस्थामें भी सम्यग्दर्शन माना है जहां केवल तैजस कार्माण शरीर और उत्तर कालीन शरीरकी पूर्णता भी नहीं तथा आहारादि वर्गणाके अभावमें भी सम्यग्दर्शनका सद्भाव रहता है। अत आप इस बातकी रचमात्र आकुलता न करें कि हमारा शरीर क्षीण हो रहा है, क्योंकि शरीर पर द्रव्य है उसके सम्बन्धसे जो कोई कार्य होने वाला है वह हो अथवा न हो परन्तु जो वस्तु आत्माहीसे समन्वित है उसकी क्षति करनेवाला कोई नहीं, उसकी रक्षा है तो ससार तट समीप ही है। विशेष बात यह है कि चरणानुयोगकी पद्धतिसे समाधिके अर्थ बाह्य सयोग अच्छे होना विधेय है किन्तु परमार्थ दृष्टिसे निज प्रबलतम श्रद्धान ही कार्यकर है। आप जानते हैं कि कितने ही प्रबल ज्ञानियोका समागम रहे किन्तु समाधिकर्ताको उनके उपदेश श्रवणकर विचार तो स्वय ही करना पड़ेगा। जो मैं एक हू, रागादिक शून्य हू, यह जो सामग्री देख रहा हू पर जन्य है, हेय है, उपादेय निज ही है। परमात्माके गुणगानसे परमात्मा द्वारा परमात्म पदकी प्राप्ति नहीं किन्तु परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलनेसे ही उस पदका लाभ निश्चित है अत सर्व प्रकारके

झंझटोंको छोड़कर भाई साहब ! अब तो केवल वीतराग निर्दिष्ट पथ पर ही आभ्यन्तर परिणामसे आरूढ हो जाओ। बाह्य त्याग की वहीं तक मर्यादा है जहां तक निज भावमें बाधा न पहुचे। अपने परिणामोंके परिणमनको देख कर ही त्याग करना क्योंकि जैन सिद्धान्तमें सत्य पथ मूर्छा त्याग वालेके ही होता है अत जो जन्मभर मोक्षमार्गका अध्ययन किया उसके फलका समय है इसे सावधानतया उपयोगमे लाना। यदि कोई महानुभाव अन्तमें दिगबर पदकी सम्मति देवे तब अपनी आभ्यन्तर विचारधारासे कार्य लेना। वास्तवमें अन्तरग बुद्धिपूर्वक मूर्छा न हो तभी उस पदके पात्र बनना। इसका भी खेद न करना कि हम शक्तिहीन हो गये अन्यथा अच्छी तरहस यह कार्य सम्पन्न करते। हीन शक्ति शरीरकी दुर्बलता है। आभ्यन्तर श्रद्धामें दुर्बलता न हो। अत निरतर यही भावना रखना।

"एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा"

अथ—एक मेरी शाश्वत आत्मा ज्ञान दर्शन लक्षणमयी है शेष जो बाहिरी भाव हैं वे मेरे नहीं हैं, सर्व सयोगी भाव हैं।।"

अत अहां तक बने स्वय आप समाधान पूर्वक अन्यको समाधिका उपदेश करना कि समाधिस्थ आत्मा अनन्त शक्ति शाली है तब वह कौन सा विशिष्ट कार्य है। वह तो उन शत्रुओंका चूर्ण कर देता है जो अनन्त संसारके कारण हैं। इति।

इस संसार समुद्रमें गोते खानेवाले जीवोंको केवल जिना-गम ही नौका है। उसका जिन भव्य प्राणियोंने आश्रय लिया है वे अवश्य एक दिन पार होंगे। आपने लिखा कि हम मोक्ष-मार्ग प्रकाशककी दो प्रति भेजते हैं सो स्वीकार करना, भला ऐसा कौन होगा जो इसे स्वीकार न करे। कोई तीव्र कषायी ही ऐसी उत्तम वस्तु अनङ्गीकार करे तो करे परन्तु हम तो शतश-धन्यवाद देते हुए आपकी भेंटको स्वीकार करते हैं। परन्तु क्या करें निरन्तर इसी चिन्तामें रहते हैं कि कब ऐसा शुभ समय आवे जो वास्तवमें हम इसके पात्र हों अभी हम इसके पात्र नहीं हुये, अन्यथा तुच्छसी तुच्छ बातोंमें नाना कल्पनाय करते हुए दुःखी न होते। अब भाई साहब! जहां तक बनें हमारा और आपका मुख्य कर्तव्य रागादिकके दूर करनेका ही निरन्तर रहना चाहिये। क्योंकि आगम ज्ञान और श्रद्धाके बिना संयतत्व भावके मोक्षमार्गकी सिद्धि नहीं, अत सब प्रयत्नका यही सार होना चाहिये जो रागादिक भावोंका अस्तित्व आत्मामें न रहे। ज्ञान वस्तुका परिचय करा देता है अर्थात् अज्ञान निवृत्ति ज्ञानका फल है किन्तु ज्ञानका फल उपेक्षा नहीं, उपेक्षाफल चारित्रका है। ज्ञानमें आरोपसे वह फल कहा जाता है। जन्मभर मोक्षमार्ग विषयक ज्ञान सपादन किया अब एकबार उपयोगमें लाकर उसका आस्वाद लो। आज कल चरणानुयोगका अभिप्राय लोगोंने पर वस्तुके त्याग और ग्रहणमें ही समझ रखा है सो नहीं। चरणानुयोगका मुख्य

प्रयोजन तो स्वकीय रागादिकके मेंटनेका है परन्तु वह पर वस्तुके सबधसे होते हैं अर्थात् पर वस्तु उसका नोकर्म होती है, अत उसको त्याग करते हैं। मेरा उपयोग अब इन बाह्य वस्तुओंके सबधसे भयभीत रहता है। मैं तो किसीके समागमकी अभिलाषा नहीं करता हू। आपको भी सम्मति देता हू कि सबसे ममत्व हटानेकी चेष्टा करो, यही पार होनेकी नौका है। जब परमें ममत्व भाव घटेगा तब स्वयमेव निराश्रय अह-बुद्धि घट जावेगी क्योंकि ममत्व और अहकारका अविना भावी सबध है एकके बिना अन्य नहीं रहता। बाईजीके बाद मैंने देखा कि अब तो स्वतत्र हू दानमे सुख होता होगा इसे करके देखू। ६०००) रुपया मेरे पास था सब त्याग कर दिया परन्तु कुछ भी शातिका अश न पाया। उपवासादिक करके शाति न मिली, परकी निंदा और आत्मप्रशसासे भी आनन्दका अकुर न हुआ भोजनादिकी प्रक्रियासे भी लेश शातिको न पाया। अत यही निश्चय किया कि रागादिक गये बिना शांतिकी उद्भूति नहीं अत सर्व व्यापार उसीके निवारणमें लगा देना ही शांतिका उपाय है। वाग्जालके लिखनेसे कुछ भी सार नहीं। ॥ इति ॥

मैं यदि अन्तरङ्गसे विचार करता तो जैसा आप लिखते हैं मैं उसका पात्र नहीं, क्योंकि पात्रताका नियामक कुशलताका अभाव है। वह अभी कोसो दूर है। हां, यह अवश्य है

यदि योग्य प्रयास किया जावेगा तब दुर्लभ भी नहीं, वस्तु रत्नादि गुण तो आनुषंगिक हैं। श्रेयोमार्गकी सन्निकटता जहां जहां होती है वह वस्तु पूज्य है अत हम और आपको बाह्य वस्तु जातमें मूर्छाकी कृशता कर आत्म तत्त्वको उत्कर्ष बनाना चाहिये। ग्रन्थाभ्यासका प्रयोजन केवल ज्ञानार्जन ही तक अवसान नहीं होता, साथहीमें पर पदार्थोंसे उपेक्षा होनी चाहिये। आगमज्ञानकी प्राप्ति और है किन्तु उसकी उपयोगिताका फल और ही है। मिश्रीकी प्राप्ति और स्वादुतामें महान् अन्तर है। यदि स्वादका अनुभव न हुआ तब मिश्री पदार्थका मिलना केवल अन्धेकी लालटेनक सदृश है, अत अब यावान् पुरुषार्थ है वह इसीमें कटिबद्ध होकर लगा देना ही श्रेयस्कर है। जो आगम ज्ञानके साथ २ उपेक्षा रूप स्वादका लाभ हो जावे। आप जानते ही हैं मेरी प्रकृति अस्थिर है तथा प्रसिद्ध हैं परतु जो अर्जित कर्म है उनका फल तो मुझे ही चखना पड़ेगा, अत कुछ भी विषाद नहीं।

विषाद इस बात का है जो वास्तविक आत्मतत्त्वका घातक है उसकी उपक्षीणता नहीं होती। उसके अर्थ निरतर प्रयास है। बाह्य पदार्थका छोडना कोई कठिन नहीं। किंतु यह नियम नहीं क्योंकि अध्यवसानके कारण छूटकर भी अध्य वसानकी उत्पत्ति अतस्तल वासना से होती है। उस वासनाके विरुद्ध शस्त्र चलाकर उसका निपात करना यद्यपि उपाय निर्दिष्ट किया है, परतु फिर भी वह क्या है ? केवल शब्दों की

सुन्दरताको छोड़कर गम्य नहीं। दृष्टांत तो स्पष्ट है, अग्निजन्य उष्णता जो जलमें है उसकी भिन्नता तो दृष्टि विषय है। यहां तो क्रोधसे जो क्षमाकी अप्रादुर्भूति है वह यावत् क्रोध न जावे तब तक कैसे व्यक्त हो। ऊपरसे क्रोध न करना क्षमा का साधक नहीं। आशयमें वह न रहे यही तो कठिन बात है। रहा उपाय तत्त्वज्ञान, सो वो हम आप सर्व जानते ही हैं किन्तु फिर भी कुछ गूढ़ रहस्य है जो महानुभावोंके समागमकी अपेक्षा रखता है, यदि वह न मिले तब आत्मा ही आत्मा है, उसकी सेवा करना ही उत्तम है। उसकी सेवा क्या है "ज्ञाता दृष्टा" और जो कुछ अतिरिक्त है वह विकृत जानना।

॥ इति ॥

ये पत्र स्व० उदासीन ब्र० दीपचन्दजी वर्णीके समाधि लाभार्थ उनके प्रत्युत्तरमें पूज्य प० गणेशप्रसादजी वर्णीके द्वारा लिखे गये हैं। उपरोक्त पत्रोसे ये पत्र विद्वत्ता, भावपूर्ण, सार गर्भित और विशेष ज्ञान ज्योतिके जाग्रत करनेवाले हैं।

श्रीमान् वर्णीजी, योग्य इच्छाकार !

पत्र न देनेका कारण उपेक्षा नहीं किन्तु अयोग्यता है। मैं जब अन्तरङ्गसे विचार करता हू तो उपदेश देनेकी कथा तो दूर रही अभी मैं सुनने और बांचनेका भी पात्र नहीं। वचन चतुरतासे किसीको मोहित कर लेना पाण्डित्यका परिचायक नहीं। श्रीकुन्दकुन्दाचार्यने कहा है---

किं काहदि वणवासो कायकिलेसोविचित्त उववासो
अज्झयणमौणपहुदी समदारहियस्य समणस्स ॥

अर्थ—समताके बिना वननिवास और काय क्लेश तथा नाना उपवास तथा अध्ययन मौन आदि कोई उपयोगी नहीं। अत इन बाह्य साधनोंका मोह व्यर्थ ही है। दीनता और स्वकार्यमें अतत्परता ही मोक्षमार्गका घातक है। जहां तक हो इस परा धीनताके भावोंका उच्छेद करनाही हमारा ध्येय होना चाहिये। विशेष कुछ समझमें नहीं आता। भीतर बहुत कुछ इच्छा लिखनेकी होती है परन्तु जब स्वकीय वास्तविक दशा पर दृष्टि जाती है तब अश्रुधाराका प्रवाह बहने लगता है। हा आत्मन्! तूने यह मानव पर्यायको पाकर भी निजतत्त्वकी ओर लक्ष्य नहीं दिया। केवल इन बाह्य पचेन्द्रिय विषयोंकी प्रवृत्तिमें ही सतोष मान कर समारको क्या अपने स्वरूपका अपहरण करके भी लज्जित न हुआ।

तद्विषयक अभिलाषाकी अनुत्पत्ति ही चारित्र है। मोक्ष मार्गमें सवर तत्व ही मुख्य है। निर्जरा तत्त्वकी महिमा इसके बिना स्याद्वाद शून्यागम अथवा जीवन शून्य शरीर अथवा नेत्रहीन मुखकी तरह है। अत जिन जीवोको मोक्ष रुचता है उनका यही मुख्य ध्येय होना चाहिये कि जो अभिलाषाओंके उत्पादक चरणानुयोगोंकी पद्धति प्रतिपादित साधनोंकी ओर लक्ष्य स्थिर कर निरन्तर स्वात्मोत्थ सुखामृतके अभिलाषी होकर रागादि शत्रुओंकी प्रबल सेनाका विध्वस करनेमें भगी-

रथ प्रयत्न कर जन्म सार्थक किया जावे किन्तु व्यर्थ न जावे इसमें यत्नपर होना चाहिये। कहा तक प्रयत्न करना उचित है? जहां तक पूर्ण ज्ञानकी पूर्णता न होय।

"भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
यावत्तावत्पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठितम् ॥"

अर्थ – यह भेद विज्ञान अखण्डधारासे भावो कि जब तक पर-द्रव्यसे रहित होकर ज्ञान ज्ञानमें (अपने स्वरूपमें) ठहरे।

क्योंकि सिद्धिका मूलमन्त्र भेद विज्ञान ही है। वही श्री आत्मतत्त्व रसास्वादी अमृतचन्द्र सूरिने कहा है—

"भेदविज्ञानत' सिद्धा सिद्धा ये किल केचन ॥
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥"

अर्थ—जो कोई भी सिद्ध हुए हैं वे भेद विज्ञानसे ही सिद्ध हुये हैं और जो कोई बधे हैं वे भेद विज्ञानके न होनेसे ही बधको प्राप्त हुये हैं।

अत अब इन परनिमित्तक श्रेयोमार्गकी प्राप्तिके प्रयत्नमें समयका उपयोग न करके स्वावलम्बनकी ओर दृष्टि ही इस जर्जरावस्थामें महती उपयोगिनी रामबाण तुल्य अचूक औषधि है। तदुक्तम्—

इतो न किंचित् परतो न किंचित्, यतो यतो यामि ततो न किंचित् ॥ विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित् स्वात्मावबोधादधिक न किंचित् ॥

अर्थ–इस तरफ कुछ नहीं है और दूसरी तरफ भी कुछ नहीं है तथा जहां जहां मैं जाता हूं वहां वहां भी कुछ नहीं है। विचार करके देखता हू तो वह संसार भी कुछ नहीं है। स्वकीय आत्मज्ञानसे बढ़ कर कोई नहीं है।

इसका भाव विचार स्वावलम्बनका शरण ही ससारबधन-के मोचनका मुख्य उपाय है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो संवर ही सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका मूल है।

मिथ्यात्वकी अनुत्पत्तिका नाम ही तो सम्यग्दर्शन है। और अज्ञानकी अनुत्पत्तिका नाम सम्यग्ज्ञान तथा रागादिककी अनुत्पत्ति यथाख्यात चारित्र और योगानुत्पत्ति ही परम यथाख्यात चारित्र है। अत संवर ही दर्शनज्ञानचारित्राराधनाके व्यपदेशको प्राप्त करता है तथा इसीका नाम तप है। क्योंकि इच्छानिरोधका नाम ही तप है।

मेरा तो दृढ विश्वास है कि जो इच्छाका न होना ही तप है। अत तप आराधना भी यही है। इस प्रकार सवर ही चार आराधना है अत जहा परसे श्रेयोमार्गकी आकांक्षाका त्याग है वहां श्रेयोमार्ग है।

श्रीयुत महानुभाव प० दीपचन्दजी वर्णी इच्छाकार! कारणकूट अनुकूलके असद्भावमें पत्र नहीं दे सका। क्षमा करना। आपने जो पत्र लिखा वास्तविक पदार्थ ऐसा ही है। अब हमें आवश्यकता इस बातकी है कि प्रभुके उपदेशके अनुकूल प्रभुकी

पूर्वावस्थावत् आचरण द्वारा प्रभु इव प्रभुताके पात्र हो जावें। यद्यपि अध्यवसानभाव परनिमित्तक हैं। यथा--

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्त। तस्मिन् निमित्त परसंग एव वस्तु स्वभावोऽयमुदेति तावत्॥

अर्थ आत्मा, आत्मा सम्बन्धी रागादिकका उत्पत्तिमें स्वय कदाचित् निमित्तताको प्राप्त नहीं होता है अर्थात् आत्मा स्वकीय रागादिकके उत्पन्न होनेमे अपने आप निमित्त कारण नहीं है किन्तु उनके होनेमें परवस्तु ही निमित्त है। जैसे अर्ककान्त मणि स्वय अग्निरूप नहीं परणमता है किन्तु सूर्य किरण उस परिणमनमें कारण है। तथापि परमार्थ तत्त्वकी गवेषणामे वे निमित्त क्या बलात्कार अध्यवसान भावके उत्पादक हो जाते है? नहीं, किन्तु हम स्वय अध्यवसान द्वारा उन्हे विषय करते हैं। जब ऐसी वस्तु मर्यादा है तब पुरुषार्थ कर उस ससार जनक भावोके नाशका उद्यम करना ही हम लोगोको इष्ट होना चाहिये। चरणानुयोगकी पद्धतिमे निमित्तकी मुख्यतासे व्याख्यान होता है। और अध्यात्म शास्त्रमे पुरुषार्थकी मुख्यता और उपादानकी मुख्यतासे व्याख्यान पद्धति है। और प्राय हमें इसी परिपाटीका अनुसरण करना ही विशेष फलप्रद होगा। शरीरकी क्षीणता यद्यपि तत्त्वज्ञानमे बाह्य दृष्टिसे कुछ बाधक है तथापि सम्यग्ज्ञानियोंकी प्रवृत्तिमें उतना बाधक नहीं हो सकती।

यदि वेदनाकी अनुभूतिमें विपरीतताकी कणिका न हो तब मेरी समझमें हमारी ज्ञान चेतनाकी कोई क्षति नहीं है।

विशेष नहीं लिख सका। आजकल यहां मलेरियाका प्रकोप है। प्राय बहुतसे इसके लक्ष्य हो चुके हैं। आप लोगोंकी अनुकपासे मैं अभीतक तो कोई आपत्तिका पात्र नहीं हुआ। कलकी दिव्य ज्ञानी जाने। अवकाश पाकर विशेष पत्र लिखनेकी चेष्टा करूगा।

श्रीयुत महाशय दीपचन्दजी वर्णी-योग्य इच्छाकार। आपका पत्र आया। आपके पत्रसे मुझे हर्ष होता है और आपको मेरे पत्रसे हर्ष होता है। यह केवल मोहज परिणामकी वासना है। आपके साहसने आपमें अपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है। यही स्फूर्ति आपको ससार यातनाओंसे मुक्त करेगी। कहने और लिखने और वाक् चातुर्य्यमें मोक्ष मार्ग नही। मोक्षमार्ग का अकुर तो अन्त करणसे निज पदार्थमें ही उदय होता है। उसे यह परजन्य मन, वचन, काय क्या जाने। यह तो पुद्गल द्रव्यके विलास हैं। जहा पर उन पुद्गलकी पर्यायोंने ही नाना प्रकारके नाटक दिखाकर उस ज्ञाता दृष्टाको इस ससार चक्रका पात्र बना रक्खा है। अत अब दीपसे तमोराशिको भेदकर और चन्द्रसे परपदार्थ जन्य आतापको शमन कर सुधा समुद्रमें अवगाहन कर वास्तविक सच्चिदानन्द होनेकी योग्यताके पात्र बनिये। वह पात्रता आपमें है। केवल साहस करनेका विलम्ब

है। अब इस अनादि संसार जननी कायरताको दग्ध करनेसे ही कार्य सिद्धि होगी। निरन्तर चिन्ता करनेसे क्या लाभ? लाभ तो आभ्यन्तर विशुद्धिसे है। विशुद्धिका प्रयोजन भेदज्ञान है। भेदज्ञानका कारण निरन्तर अध्यात्म ग्रन्थोंकी चिन्तना है। अतः इस दशामें परमात्म प्रकाश ग्रन्थ आपको अत्यन्त उपयोगी होगा। उपयोग सरल रीतिसे इस ग्रन्थमें सलग्न हो जाता है। उपक्षीण कायमें विशेष परिश्रम करना स्वास्थ्यका बाधक होता है अतः आप सानन्द निराकुलता पूर्वक धर्मध्यानमें अपना समय यापना कीजिये। शरीरकी दशा तो अब क्षीण सन्मुख हो रही है। जो दशा आपकी है वही प्राय सबकी है। परन्तु कोई भीतरसे दुःखी है तो कोई बाह्यसे दुःखी है। आपको शारीरिक व्याधि है जो वास्तवमें अघाति कर्म असाताकर्म जन्य है। वह आत्मगुण घातक नहीं। आभ्यन्तर व्याधि मोहजन्य होती है। जो कि आत्मगुण घातक है। अतः आप मेरी सम्मति अनुसार वास्तविक दुःखके पात्र नहीं—अतः आपको अब बडी प्रसन्नता इस तत्त्वकी होनी चाहिये जो मैं आभ्यतर रोगसे मुक्त हू।

प० छोटेलालसे दर्शन विशुद्धि। भाई सा० एक धर्मात्मा और साहसी वीर हैं। उनकी परिचर्या करना वैयावृत्य तप है। जो निर्जराका हेतु है। हमारा इतना शुभोदय नहीं जो इतने धीर, वीर वरवीर, दुःखसीर बन्धुकी सेवा कर सके।

श्रीयुत वर्णी जी-योग्य इच्छाकार,

पत्र मिला। मैं बराबर आपकी स्मृति रखता हूं, किन्तु ठीक पता न होनेसे पत्र न दे सका। क्षमा करना। पैदल यात्रा आप धर्मात्माओंके प्रसाद तथा पार्श्वनाथ प्रभुके चरण प्रसादसे बहुत ही उत्तम भावोंसे हुई। मार्गमें अपूर्व शांति रही। कंटक भी नहीं लगा। तथा आभ्यन्तरकी भी अशान्ति नहीं हुई। किसी दिन तो १६ मील तक चला। खेद इस बातका रहा कि आप और बाबाजी साथमें न रहे। यदि रहते तो वास्तविक आनन्द रहता। इतना पुण्य कहां—बन्धुवर! आप श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक और समाधिशतकका समयसारका ही स्वाध्याय करिये। और विशेष त्यागके विकल्पमें न पड़िये। केवल क्षमादिक परिणामोंके द्वारा ही वास्तविक आत्माका हित होता है। काय कोई वस्तु नहीं तथा आपही स्वय कृश हो रही है। उसका क्या विकल्प। भोजन स्वयमेव न्यून हो गया है। जो कारण बाधक है आप बुद्धि पूर्वक स्वय त्याग रहे हैं। मेरी तो यही भावना है—"प्रभु पार्श्वनाथ आपकी आत्मा को इस बधनके तोड़नेमें अपूर्व सामर्थ्य दे।" आपके पत्रसे आपके भावो की निर्मलताका अनुमान होता है। स्वतन्त्र भाव ही आत्म कल्याणका मूल मन्त्र है। क्योंकि आत्मा वास्तविक दृष्टिसे तो सदा शुद्ध ज्ञानानद स्वभाववाला है। कर्म कलकसे ही मलीन हो रहा है। सो इसके पृथक् करनेकी जो विधि है उस पर आप आरूढ़ हैं। बाह्य क्रियाकी त्रुटि

आत्मपरिणामका बाधक नहीं और न मानना ही चाहिये। सम्यग्दृष्टि जो निन्दा तथा गर्हा करता है, वह अशुद्धोपयोग-की है न कि मन वचन, कायके व्यापारकी। इस पर्यायमें हमारा आपका सम्बन्ध न भी हो। परतु मुझे अभी विश्वास है कि हम और आप जन्मान्तरमे अवश्य मिलेंगे। अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार अवश्य एक मासमें १ वार दिया कर। मेरी आपके भाईसे दर्शन विशुद्धि।

श्रीयुत प० दीपचन्दजी धर्मरत्न इच्छामि।

पत्र पढकर सन्तोष हुआ। तथा आपका अभिप्राय जितनी मण्डली थी सबको श्रवण प्रत्यक्ष करा दिया। सर्व लोक आपके आशिक रत्नत्रयकी भूरिश प्रशसा करते हैं।

आपने जो प० भूधरदासजीकी कविता लिखी सो ठीक है। परन्तु यह कविता आपके ऊपर नहीं घटती। आप शूर हैं। देहकी दशा जैसी कवितामें कविने प्रतिपादित की है तदनु-रूप ही है परन्तु इसमे हमारा क्या घात हुआ? यह हमारी बुद्धिगोचर नहीं हुआ। घटक घातसे दीपकका घात नहीं होता। पदार्थका परिचायक ज्ञान है। अत ज्ञानमें ऐसी अवस्था शरीरकी प्रतिभासित होती ह एतावत् क्या ज्ञान तद्रूप हो गया।

—श्लोक—

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमाबोद्धा न बोध्यादयम्।
यायात्कामपि विक्रिया तत इतो दीपः प्रकाश्यादपि॥

तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो ।
रागद्वेषमयी भवन्ति सहजा मु चत्युदासीनताम् ॥

अर्थ—पूर्ण अद्वितीय नहीं च्युत है शुद्ध बोधकी महिमा जाकी ऐसा जो बोद्धा है वह कभी भी बोध्य पदार्थके निमित्त-से प्रकाश्य (घटादि) पदार्थसे प्रदीपकी तरह कोई भी विक्रिया को प्राप्त नहीं होता है । इस मर्यादा विषयक बोधसे जिसकी बुद्धि वन्ध्या ह वे अज्ञानी हैं। वे ही रागद्वेषादिकके पात्र होते हैं और स्वाभाविक जो उदासीनता है उसे त्याग देते हैं। आप विज्ञ हैं कभी भी इस असत्य भावको आलम्बन न देवेंगे। अनेकानेक मर चुके तथा मरते हैं और मरगे। इससे क्या आया। एक दिन हमारी भी पर्याय चली जावेगी। इसमें कौनसी आश्चर्य की घटना है इसका तो आपसे विज्ञ पुरुषों-को विचार कोटिसे पृथक् रखना ही श्रेयस्कर है। जो यह वेदना असाताके उदय आदि कारण कूट होने पर उत्पन्न हुई और हमारे ज्ञानमे आयी। वेदना क्या वस्तु है? परमाथ से विचारा जाय तो यह एक तरहसे सुख गुणमें विकृति हुई वह हमारे ध्यानमें आयी। उसे हम नहीं चाहते। इसमें कौनसी विपरीतता हुई? विपरीतता तो तब होती है जब हम उसे निज मान लेते। विकारज परिणतिको पृथक् करना अप्रशास्त नहीं, अप्रशास्तता तो यदि हम उसीका निरतर चिंतवन करते रहें और निजत्वको विस्मरण हो जावे तब है।

अत जितनी भी अनिष्ट सामग्री मिले, मिलने दो। उसके प्रति आदर भावसे व्यवहार कर ऋण मोचन पुरुषकी तरह आनन्दसे साधुकी तरह प्रवृत्ति करना चाहिये। निदानको छोडकर आतत्रयषष्ठ गुणस्थान तक होते हैं। थोड़े समय तक अर्जित कर्म आया, फल देकर चला गया। अच्छा हुआ, आकर हलकापन कर गया। रोगका निकलना ही अच्छा है। मेरी सम्मतिमें निकलना रहने की अपेक्षा, प्रशस्त है। इसी प्रकार आपकी असाता यदि शरीरकी जीर्ण शीर्ण अवस्था द्वारा निकल रही है तब आपको बहुत ही आनन्द मानना चाहिये। अन्यथा यदि वह अभी न निकलती तब क्या स्वर्गमें निकलती ? मेरी दृष्टिमें केवल असाता ही नहीं निकल रही, साथ ही मोहकी अरति आदि प्रकृतियां भी निकल रही हैं। क्योंकि आप इस असाताको सुख पूर्वक भोग रहे हैं। शांति पूर्वक कर्मोके रसको भोगना आगामी दु खकर नहीं।

बहुत कुछ लिखना चाहता हू परन्तु ज्ञानकी न्यूनतासे लेखनी रुक जाती है। बन्धुवर! मैं एक बातकी आपसे जिज्ञासा करता हू, जितने लिखनेवाले और कथन करनेवाले तथा कथन कर बाह्य चरणानुयोगके अनुकूल प्रवृत्ति करनेवाले तथा आर्ष वाक्यों पर श्रद्धालु यावत् व्यक्ति हुये हैं अथवा हैं तथा होंगे, क्या सर्व ही मोक्षमार्गी हैं? मेरी तो श्रद्धा नहीं। अन्यथा श्री कुन्दकुन्द स्वामीने लिखा है। हे प्रभो! "हमारे शत्रु को भी द्रव्यलिंग न हो" इस वाक्य की चरितार्थता

न होती तो काहेको लिखते । अत परकी प्रवृति देख रंचमात्र भी बिकल्पको आश्रय न देना ही हमारे लिये हितकर है । आपके ऊपर कुछ भी आपत्ति नहीं, जो आत्महित करनेवाले हैं वह शिर पर आग लगाने पर तथा सर्वांग अग्निमय आभूषण धारण कराने पर तथा यत्रादि१द्वारा उपद्रित होनेपर मोक्षलक्ष्मी-के पात्र होते हैं । मुझे तो इस आपकी असाता और श्रद्धा देख कर इतनी प्रसन्नता होती है । प्रभो ? यह अवसर सबको दे । आपकी केवल श्रद्धा ही नहीं । किन्तु आचरण भी अन्यथा नहीं । क्या मुनिको जब तीव्र व्याधिका उदय होता है, तब बाह्य चरणानुयोग आचरणके असद्भावमें क्या उनके छठवां गुणस्थान चला जाता है ? यदि ऐसा है तब उसे समाधिमरण-के समय हे मुने ! इत्यादि सम्बोधन करके जो उपदेश दिया है वह किस प्रकार सगत होगा । पीडा आदिमें चित्त चचल रहता है इसका क्या यह आशय है पीडाका बारम्बार स्मरण हो जाता है । हो जाओ, स्मरण ज्ञान है और जिसकी धारणा होती है उसका बाह्य निमित्त मिलने पर स्मरण होना अनिवार्य है । किन्तु साथमें यह भाव तो रहता है । यह चचलता सम्यक् नहीं परन्तु मेरी समझमें इस पर भी गभीर दृष्टि दीजिये । चंचलता तो कुछ बाधक नहीं । साथमें उसके अरतिका उदय और असाताकी उदीरणासे दु खानुभव हो जाता है । उसे पृथक् करनेकी भावना रहती है । इसीसे इसे महर्षियोंने

१ घानी, कोल्हू ।

आर्त्त ध्यान की कोटिमें गणना की है। क्या इस भावके होनेसे पचम गुणस्थान मिट जाता है? यदि इस ध्यानके होने पर देश व्रतके विरुद्ध भावका उदय श्रद्धामें न हो तब मुझे तो दृढतम विश्वास है गुणस्थानकी कोई भी क्षति नहीं। तरतमता ही होती है वह भी उसी गुणस्थानमें। ये विचारे जिन्होंने कुछ नहीं जाना कहा जावगे, क्या करे इत्यादि विकल्पोंके पात्र होते हैं—कहीं जाओ हमें इसकी मीमांसासे क्या लाभ? हम विचारे इस भावसे कहा जावे गे इस पर ही विचार करना चाहिये।

आपका सच्चिदानन्द जसा आपकी निर्मल दृष्टिने निर्णीत किया है द्रव्य दृष्टिसे वसा ही है। परन्तु द्रव्य तो भोग्य नहीं, भोग्य तो पर्याय ह, अत उसके तात्त्विक स्वरूपक जो बाधक हैं उन्हे पृथक् करनेकी चेष्टा करना ही हमारा पुरुषार्थ है।

चोरकी सजा देखकर साधुको भय होना मेरे ज्ञानमें नहीं आता। अत मिथ्यात्वादि क्रिया सयुक्त प्राणियोंका पतन देख हमें भय होनेकी कोई भी बात नहीं। हमको तो जब सम्यक् रत्नत्रयकी तलवार हाथमें आगई है और वह यद्यपि वर्तमानमें मौथरी धारवाली हैं। परन्तु ह तो असि। कर्म धनको धीरे धीरे छेदेगी। परन्तु छेदेगी ही। बड़े आनन्दसे जीवनोत्सर्ग करना। अशमात्र भी आकुलता श्रद्धामें न लाना। प्रभुने अच्छा ही देखा है। अन्यथा उसके मार्ग पर हम लोग न आते। समाधिमरणके योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव क्या पर निमित्त ही हैं? नहीं।

जहां अपने परिणामोंमें शांति आई वहीं सर्व सामग्री है।

अत हे भाई। आप सब उपद्रवोंके हरणमें समर्थ और कल्याण पथके कारणोंमें प्रमुख जो आपकी दृढ़तम श्रद्धा है वह उपयोगिनी कर्म शत्रु वाहिनीको जयनशीला तीक्ष्ण असिधारा है। मैं तो आपके पत्र पढकर समाधिमरणकी महिमा अपने ही द्वारा होती है।

निश्चय कर चुका हू। क्या आप इससे लाभ न उठावगे? अवश्य ही उठावगे।

नोट—मैं विवश हो गया। अन्यथा अवश्य आपके समाधिमरणमे सहकारी हो पुण्यलाभ करता। आप अच्छे स्थान पर ही जावगे। परन्तु पचम काल है। अत हमारे सम्बोधनके लिये आपका उपयोग ही इस ओर न जावेगा। अथवा जावेगा ही तब कालकृत असमर्थता बाधक होकर आपको शांति देगी। इससे कुछ उत्तरकालकी याचना नहीं करता।

—०—

श्रीयुत महाशय प० दीपचन्दजी वर्णी–योग्य इच्छाकार।

बन्धुवर। आपका पत्र पढकर मेरी आत्मामें अपार हर्ष होता है कि आप इस रुग्णावस्थामें दृढश्रद्धालु हो गये हैं। यही ससारसे उद्धारका प्रथम प्रयत्न है। कायकी क्षीणता कुछ आत्मतत्त्वकी क्षीणतामें निमित्त नहीं। इसको आप समीचीनतया जानते हैं। वास्तवमें आत्माके शत्रु तो राग, द्वेष और मोह हैं। जो इसे निरन्तर इस दु खमय ससारमें भ्रमण करा रहे

हैं। अत आवश्यकता इसकी है कि जो राग द्वेषके आधीन न होकर स्वात्मोत्थ परमानन्दकी ओर ही हमारा प्रयत्न सतत रहना ही श्रेयस्कर है।

औदयिक रागादि होवें इसका कुछ भी रंज नहीं करना चाहिये। रागादिकोंका होना रुचिकर नहीं होना चाहिये। बड़े बड़े ज्ञानी जनोंके राग होता है। परन्तु उस रागमें रजकताके अभावसे अग्रे उसकी परिपाटी रोधका आत्माको अनायास अवसर मिल जाता है। इस प्रकार औदयिक रागादिकोंकी सन्तानका अपचय होते होते एक दिन समूलतलसे उसका अभाव हो जाता है और तब आत्मा अपने स्वच्छ स्वरूप होकर इन ससारकी वासनाओंका पात्र नहीं होता। मैं आपको क्या लिखू ? यही मेरी सम्मति है—जो अब विशेष विकल्पोंको त्यागकर जिस उपायसे राग द्वेषका आशयमें अभाव हो वही आपका व मेरा कर्त्तव्य है। क्योंकि पर्यायका अवसान है। यद्यपि पर्यायका अवसान तो होगा ही किन्तु फिर भी सम्बो-धनके लिये कहा जाता है तथा मूढोंको वास्तविक पदार्थका परिचय न होनेसे बडा आश्चर्य मालूम पडता है।

विचारसे देखिये—तब आश्चर्यको स्थान नहीं। भौतिक पदार्थों की परिणति देखकर बहुतसे जन क्षुब्ध हो जाते हैं। भला जब पदार्थ मात्र अनन्त शक्तियोंके पुञ्ज है, तब क्या पुद्गलमें यह बात न हो, यह कहाका न्याय है। आजकल विज्ञानके प्रभावको देख लोगोंकी श्रद्धा पुद्गल द्रव्यमें ही जाग्रत हो गई है।

भला वह जो विभावादि, उसका उपयोग किसने किया ? जिसने किया उसको न मानना यही तो जड़भाव है।

बिना रागादिकके कार्माण वर्गणा क्या कर्मादि रूप परिणमनको समर्थ हो सकती है ? तब यों कहिये। अपनी अनन्तशक्तिके विकासका बाधक आपही मोहकर्म द्वारा हो रहा है। फिर भी हम ऐसे अन्धे हैं जो मोहकी ही महिमा आलाप रहे हैं। मोहमें बलवत्ता देनेवाली शक्तिमान वस्तुकी ओर दृष्टि प्रसार कर देखो तो धन्य उस अचिन्त्य प्रभाववाले पदार्थको कि जिसकी वक्र दृष्टिसे यह जगत् अनादिसे बन रहा है। और जहा उसने वक्र दृष्टिको सकोचकर एक समय मात्र सुदृष्टिका अवलम्बन किया कि इस ससारका अस्तित्व ही नहीं रहता। सो ही समयसारमें कहा है—

कलशः—

कषायकलिरेकत· शान्तिरस्त्येकतो।
भवोपहतिरेकत· स्पृशति मुक्तिरप्येकतः॥
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकत·।
स्वभावमहिमाऽऽत्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः॥

अर्थ—एक तरफसे कषाय कालिमा स्पर्श करती है और एक तरफसे शान्ति स्पर्श करती है। एक तरफ ससारका आघात है और एक तरफ मुक्ति है। एक तरफ तीनों लोक प्रकाशमान है और एक तरफ चेतन आत्मा प्रकाश कर रहा है। यह बड़े आ-

श्चर्यकी बात है कि आत्माकी स्वभाव महिमा अद्‌भुतसे अद्‌भुत विजयको प्राप्त होती है। इत्यादि अनेक पद्यमय भावोंसे यही अन्तिम करन प्रतिभाका विषय होता है जो आत्म द्रव्य ही की विचित्र महिमा है। चाहे नाना दुःखाकीर्ण जगतमें नाना वेष धारणकर नटरूप बहुरूपिया बने। चाहे स्वनिर्मित सम्पूर्ण लीलाको सम्वरण करके गगनवत् पारमार्थिक निमल स्वभाव को धारणकर निश्चल तिष्ठ। यही कारण है। "सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म" अर्थ- यह सपूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है। इसमें कोई सन्देह नहीं, यदि वेदान्ती एकान्त दुराग्रहका छोड देवे। तब जो कुछ कथन है अक्षरश सत्य भासमान होने लगे। एकान्त दृष्टि ही अन्धदृष्टि है। आप भी अल्प परिश्रमसे कुछ इस ओर आइये। भला यह जो पच स्थावर और त्रसका समुदाय जगत् दृश्य हो रहा है, क्या है? क्या ब्रह्मका विकार नहीं? अथवा स्वमतकी ओर कुछ दृष्टिका प्रसार कीजिये। तब निमित्त कारणको मुख्यतासे ये जो रागादिक परिणाम हो रहे हैं, क्या उन्हे पौद्‌गलिक नहीं कहा है? अथवा इन्हे छोडिये। जहा अवधिज्ञानका विषय निरूपण किया है, वहा क्षयोपशम भावको भी अवधिज्ञानका विषय कहा है। अर्थात्—पुद्‌गल द्रव्य सम्बन्धेन जायमानत्वात् क्षायोपशिक भाव भी कथचित् रूपी है। केवलज्ञान भाव अवधिज्ञानका विषय नहीं क्योंकि उसमें रूपी द्रव्यका सम्बन्ध नहीं। अतएव यह सिद्ध हुआ औदयिक भाववत् क्षायोपशमिक भाव भी कथचित् पुद्‌गल

सम्बन्धेन जायमान होनेसे मूर्तिमान है न कि रूप रसादि सत्ता इनमें है। तद्वत् अशुद्धताके सम्बन्धसे जायमान होनेसे यह भौतिक जगत भी कथचित् ब्रह्मका विकार है। कथंचित् का यह अर्थ है—

जीवके रागादिक भावोंके ही निमित्तको पाकर पुद्गल द्रव्य एकेन्द्रियादि रूप परिणमनको प्राप्त है। अत यह जो मनुष्यादि पर्याय हैं, दो असमान जातीय द्रव्यके सम्बन्धसे निष्पन्न हैं। न केवल जीवकी है और न केवल पुद्गलकी है। किन्तु जीव और पुदगलके सम्बन्धसे जायमान हैं। तथा यह जो रागादि परिणाम हैं सो न तो केवल जीवके ही है और न केवल पुद्गल-के है किन्तु उपादानकी अपेक्षा तो जीवके है और निमित्त कारणकी अपेक्षा पुदूगलके है। और द्र०य दृष्टि कर देखे तो न पुद्गलके है और न जीवके है। शुद्ध द्रव्यके कथनमें पर्यायकी मुख्यता नहीं रहती। अत यह गौण हो जाते है। जैसे पुत्र पर्याय स्त्री पुरुष दोनोंके द्वारा सम्पन्न होती है। अस्तु इससे यह निष्कर्ष निकला यह जो पर्याय है, वह केवल जीवकी नहीं किन्तु पौदूगल मोहके उदयसे आत्माके चारित्र गुणमें विकार होता है। अत हमें यह न समझना चाहिये कि हमारी इसमें क्या क्षति है ? क्षति तो यह हुई जो आत्माकी वास्त-विक परिणति थी वह विकृत भावको प्राप्त हो गई। यही तो क्षति है। परमार्थसे क्षतिका यह आशय है कि आत्मामें रा गादिक दोष हो जाते है वह न होवें। तब जो उन दोषोंके

निमित्तसे यह जीव किसी पदार्थमें अनुकूलता और किसीमें प्रतिकूलताकी कल्पना करता था और उनके परिणमन द्वारा हर्ष विषाद कर वास्तविक निराकुलता (सुख) के अभावमें आकुलित रहता था। शान्तिके आस्वादकी कणिकाको भी नहीं पाता था। अब उन रागादिक दोषोके असद्भावमें आत्मगुण चारित्रकी स्थिति अकम्प और निर्मल हो जाती है। उसके निर्मल निमित्तको अवलम्बन कर आत्माका चेतना नामक गुण है वह स्वयमेय दृश्य और ज्ञेय पदार्थोका तद्रूप हो दृष्टा और ज्ञाता शक्तिशाली होकर आगामी अनन्त काल स्वाभाविक परिणमनशाली आकाशादिवत् अकम्प रहता है। इसी का नाम भाव मुक्ति है। अब आत्मामें मोह निमित्तक जो कलुषता थी वह सर्वथा निर्मूल हो गई किन्तु अभी जो योग निमित्तक परिस्पन्दन है वह प्रदेश प्रकम्पनको करता ही रहता है। तथा तन्निमित्तक ईर्यापथास्रव भी साता वेदनीयका हुआ करता है। यद्यपि इसमें आत्माके स्वाभाविक भावकी क्षति नहीं। फिर भी निरपवत्य आयुके सद्भावमें यावत् आयुके निषेक है तावत् भव स्थितिको मेंटनेको कोई भी क्षम नहीं। तब अन्तर्मुहूर्त आयुका अवसान रहता है। तथा शेष जो नामादिक कर्मकी स्थिति अधिक रहती है, उस कालम तृतीय शुक्लध्यानके प्रसादसे दंडकपाटादि द्वारा शेष कर्मोंकी स्थितिको आयु सम कर चतुर्दश गुणस्थानका आरोहण कर अयोग नामको प्राप्त करता हुआ लघु पचाक्षरके उच्चारणके

काल सम गुणस्थानका काल पूर्ण कर चतुर्थ ध्यानके प्रसादसे शेष प्रकृतियोंको नाश कर परम यथाख्यात चारित्रका लाभ करता हुआ १ समयमें द्रव्य मुक्ति व्यपदेशताको लाभकर मुक्ति साम्राज्य लक्ष्मीका भोक्ता होता हुआ लोकशिखरमें विराजमान होकर तीर्थ कर प्रभुके ज्ञानका विषय होकर हमारे कल्याणमें सहायक हो। यही हम सबकी अन्तिम प्रार्थना है।

श्रीमान् बाबा भागीरथजी महाराज आ गये, उनका सस्नेह आपको इच्छाकार। खेद इस बातका विभावजन्य हो जाता है जो आपकी उपस्थिति यहाँ न हुई। जो हमें भी आपकी वैयावृत्ति करनेका अवसर मिल जाता परन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहा ? जो सल्लेखनाधारी एक सम्यग्ज्ञानी पचम गुण-स्थानवर्ती जीवकी प्राप्ति हो सके। आपके स्वास्थ्यमें आभ्यतर तो क्षति है नहीं, जो है सो बाह्य है। उसे आप प्राय वेदन नहीं करते यही सराहनीय है। धन्य है आपको—जो इस रुग्णा-वस्थामें भी सावधान हैं। होना ही श्रेयस्कर है। शरीरकी अवस्था अपस्मार वेगवत् वर्धमान हीयमान होनेसे अध्रुव और शीतदाह ज्वरावेश द्वारा अनित्य है। ज्ञानी जनको ऐसा जानना ही मोक्षमार्गका साधक है। कब ऐसा समय आवेगा जो इसमें वेदनाका अवसर ही न आवे। आशा है एक दिन आवेगा। जब आप निश्चल वृत्तिके पात्र होवेंगे। अब अन्य कार्योंसे गौण भाव धारणकर सल्लेखनाके ऊपर ही दृष्टि दीजिये और यदि कुछ लिखनेकी चुलबुल

उठे तब उसी पर लिखनेकी मनोवृत्तिकी चेष्टा कीजिये। मैं आपकी प्रशसा नहीं करता, किन्तु इस समय ऐसा भाव जैसा कि आपका है प्रशस्त है।

ज्येष्ठ वदी १ से फा० सु० ५ तक मौनका नियम कर लिया है। एक दिनमें १ घण्टा शास्त्रमें बोलूंगा।

पत्र मिल गया—पत्र न देनेका अपराध क्षमा करना,

श्रीयुत महाशय दीपचन्दजी वर्णी साहब—योग्य इच्छाकार। पत्रसे आपके शारीरिक समाचार जाने—अब यह जो शरीर पर है शायद इससे अल्प ही कालमें आपकी पवित्र भावनापूर्ण आत्माका सम्बन्ध छूटकर वैक्रियक शरीरसे सबध हो जावे। मुझे यह दृढ श्रद्धान है कि आपकी असावधानी शरीरमें होगी-न कि आत्मचिंतवनमें। असातोदयमे यद्यपि मोहकेसद्भावसे विकलताकी सम्भावना है। तथापि आशिक भी प्रबल मोहके अभावमें वह आत्मचिंतनका बाधक नहीं हो सकती। मेरी तो दृढ श्रद्धा है कि आप अवश्य इसी पथ पर होंगे। और अन्ततक दृढतम परिणामो द्वारा इन क्षुद्र बाधाओंकी ओर ध्यान भी न दगे। यही अवसर ससार लतिकाके घातका है।

देखिये जिस असातादि कर्मोंकी उदीरणाके अर्थ महर्षि लोग उग्रोग्रतप धारण करते करते शरीरको इतना कृश बना दते हैं, जो पूर्व लावण्यका अनुमान भी नहीं होता। परन्तु आत्म दिव्य शक्तिसे भूषित ही रहते हैं। आपका धन्यभाग्य

है। जो बिना ही निर्ग्रंथपद धारणके कर्मोका ऐसा लाघव हो रहा है जो स्वयमेव उदयमें आकर पृथक् हो रहे हैं। इसका जितना हर्ष मुझे है, नहीं कह सकता, वचनातीत है।

आपके ऊपरसे भार पृथक् हो रहा है फिर आपके सुखकी अनुभूति तो आपही जाने। शांतिका मूल कारण न साता है और न असाता, किन्तु साम्यभाव है। जो कि इस समय आपके हो रहे हैं। अब केवल स्वात्मानुभव ही रसायन परमौषधि है। कोई कोई तो क्रम क्रमसे अन्नादिका त्याग कर समाधिमरणका यत्न करते हैं। आपके पुण्योदयसे स्वयमेव वह छूट गया। वही न छूटा साथ साथ असातोदय द्वारा दु खजनक सामग्रीका भी अभाव हो रहा है।

अत हे भाई! आप रचमात्र क्लेश न करना, जो वस्तु पूर्व अर्जित है यदि वह रस देकर स्वयमेव आत्माको लघु बना देती है। इससे विशेष और आनन्दका क्या अवसर होगा। मुझे अन्तरगसे इस बातका पश्चात्ताप हो जाता है, जो अपने अन्तरग बन्धुकी ऐसी अवस्थामें वैयावृत्य न कर सका।

माघ व० १४ स० १९९७, } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
—	४	समार्पित	समर्पित
७	६	उसका	भुसका
३०	२२	दशन	दर्शन
३४	११	शान्ति	शान्त
४१	१	स्वाधायकी	स्वाध्यायकी
५८	१७	साथ	स्वार्थ
६१	५	कम	कम
६४	२१	जन्मान्तराक	जन्मान्तरके
६५	१५	धममें	धर्ममे
६६	३	स्वध्यायम	स्वाध्यायम
७३	१८	मतकर है	सतक रहै
७४	११	विशुद्धि	विशुद्ध
७६	४	सम्मत्त	सम्मति
७७	१	ह	है
७८	६	विपर्ययता, हे	विपर्ययता है
७६	४	जबद लोओ	जपदे लोगो

८४	११	अब	कब
८५	५	ले जानेकी	भजनेकी
६१	६	रागद्व षरूप	रागद्वेप रूप
६६	११	केवलज्ञान	नल ज्ञान
६७	२	--	स्वगत
	१३	रागमे	रागसे
,,		द्वेपम	द्वेषसे
,,	१६	मिथ्यापत्रके	मिथ्यात्वके
६८	३	स्थितिकी	स्थिति
१०२	६	दुनिवाकी	दुनियाकी
१०४	१६	समुद्रघातक	समुद्घातके
१०५	२१	जाय	जाता
		नये	नय
१०६	५	समभ	समझ

समाधिमरण पत्र पुञ्ज

५		स्जय	स्व०
२८	१६	क्षायापशिक	क्षायोपशमिक
३२	१६	क्षद्र	क्षुद्र
,,	२१	आयका	आपका